१३

२५वां वर्ष

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

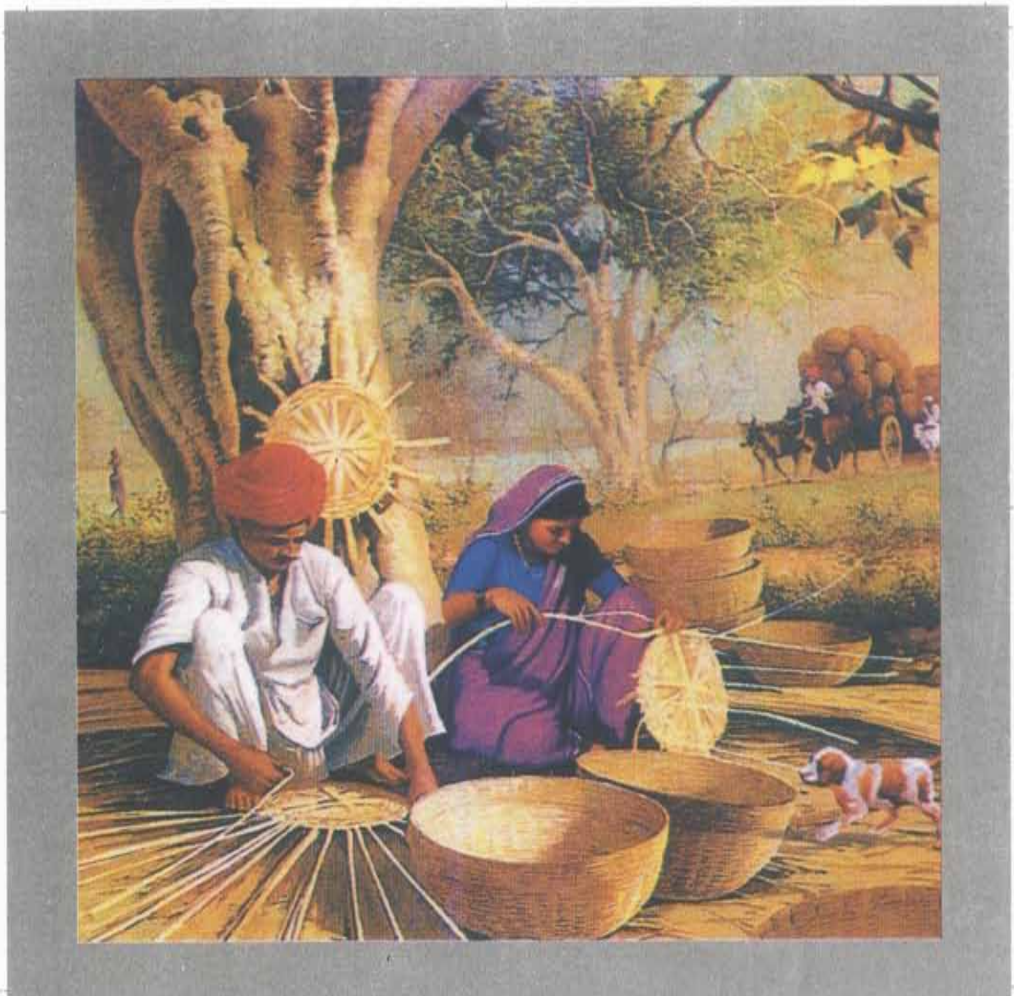

कहानियां

जयनारायण, आलोक पांडेय, सूरज प्रकाश

आमने–सामने
सूरज प्रकाश

सागर–सीपी
प्रेम प्रकाश

१५ रुपये

जनवरी - मार्च २००४

जनकल्याण बँक
तुमच्या ठेवींवर देत आहे
अधिकतम फायदा
अत्युच्च सुरक्षा
7.00%*
तुमच्या ठेवींवरील व्याज दर
जेष्ठ नागरीकांच्या १५ महिने आणि अधिक मुदतीच्या ठेवींवर अतिरिक्त व्याजदर
१ लाखापर्यंत एक ठेव पावती अतिरिक्त* ०.५०%
१ लाखापेक्षा अधिक रकमेची एक ठेव पावती अतिरिक्त* ०.७५%
उच्च मूल्याच्या ठेवींवरील व्याज दर
१५ लाखांची एक ठेव पावती ते ५० लाखापर्यंत अतिरिक्त* ०.५०%
५० लाखांवरील एक ठेव पावती अतिरिक्त* ०.७५%
*अटी लागू
जनकल्याण
जनकल्याण सहकारी बँक लि.
(शेड्यूल्ड बँक)
स्पर्श आपुलकीचा, संबंध वर्षानुवर्षांचा
मुख्यकार्यालय : विवेक दर्शन, १४०, सिंधी सोसायटी, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१, फोन.: २५२२ २५८२ फॅक्स : २५२३ ०२६६
मुंबई व मुंबईच्या बाहेरील भागात पसरलेल्या २५ शाखांव्दारे उत्कृष्ट ग्राहक सेवेस सदैव तत्पर
L'amour/JSB/Col/27

जनवरी-मार्च २००४
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड

कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● संपर्क ●

ए-१० 'बसेरा',
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१ ५५४१ व २५५५ ५८२२
e-mail: kathabimb@yahoo.com

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
जी-२४, शकुंतला, सेक्टर-६,
वाशी, नवी मुंबई-४०० ७०३
फोन : २७८२ ०१९९

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
१५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || महाभिनिष्क्रमण / **जयनारायण**
|| २२ || निर्मोही / **आलोक पांडेय**
|| २८ || राइट नंबर : रॉन्ग नंबर / **सूरज प्रकाश**

लघुकथाएं

|| १३ || मुक्ति / **डॉ. रामनिवास 'मानव'**
|| २६ || तिरुपति यात्रा / **रघुनाथ प्रसाद 'विकल'**
|| ४१ || असभ्य: आग और पानी / **हसन जमाल**
|| ५४ || फासला / **मंगला रामचंद्रन**
|| ५५ || समझौता / **मनोज सोनकर**

गीत / ग़ज़लें / कविताएं

|| १९ || दो गीत / **डॉ. (श्रीमती) राजकुमारी पाठक**
|| २५ || दोहे / **डॉ. सुरेंद्र वर्मा**
|| ५३ || मोची और मैं / **मिथिलेश 'आदित्य'**
|| ५३ || कौन सा राज़ खोल रही है लड़की ? / **कैलाश पचोरी**
|| ५४ || ज्ञान की भी इक कलाली हो / **हृदयेश भारद्वाज**
|| ५४ || चारों ओर यहां दलदल है / **हृदयेश भारद्वाज**
|| ५४ || ग़ज़ल / **शिव ओम 'अंबर'**
|| ५५ || ग़ज़ल / **शिव ओम 'अंबर'**

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ३५ || आमने-सामने / **सूरज प्रकाश**
|| ४२ || सागर-सीपी / **प्रेम प्रकाश**
|| ४७ || पुस्तक-समीक्षाएं

पिछले अंक के आवरण के चित्रकार :
राधाकृष्ण बोरड़ीवाला, नेवरों का मोहल्ला, नोहर - ३३५ ५२३

लेटर बॉक्स

प्यारी मनभावन है "कथाबिंब" ।
जीवन की सचाइयों का है प्रतिबिंब ॥
सशक्त कहानियां हैं इसकी जान ।
'आमने-सामने' स्तंभ है इसकी शान ॥
लघुकथाएं बहुत कुछ कह जातीं ।
'कुछ कही कुछ अनकही' भी मन भाती ॥
गीत, ग़ज़लों से बढ़ता है निखार ।
सार्थक कविताएं हैं पत्रिका का आधार ॥
सार्थक सृजन का है भरपूर भंडार ।
सशक्त रचनाओं का भरापूरा संसार ॥
सदा जीवंत रहे यही शुभकामना ।
'कथाबिंब' की स्वर्ण जयंती पर मंगलकामना ॥

दिलीप भाटिया

टाइप ५/५, अणुकिरण, रावतभाटा, कोटा (राज.) ३२३३०७

"कथाबिंब" का पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश निसंदेह एक महत्वपूर्ण बात है. "कथाबिंब" ने लगातार व अनावश्यक शोरगुल मचाये बिना साहित्य जगत में अपना योगदान दिया है इसी का प्रमाण है, इसका पाठक-लेखक जगत. जो भले ही बड़ा न हो लेकिन मन से इसके साथ जुड़ा हुआ है. बहरहाल, पत्रिका के २५वें वर्ष में प्रवेश पर पत्रिका से जुड़े सभी व्यक्ति बधाई के पात्र हैं.

'आमने-सामने' में इस बार संजीव निगम ने बड़ी ही रोचकता से अपने परिवेश को रेखांकित किया है. एक तरफ दिल्ली की जालिम (खींचती) गलियां तो दूसरी तरफ मुंबई की आकर्षक (धकियाती) ज़िंदगी. दो ध्रुवों के बीच फैली ज़िंदगी में सुधा अरोड़ा जैसे रचनाकार भी हैं जो 'खरोंच' पर बधाई देने को आगे आयीं. मुंबई अभी पूरी तरह नहीं मरी है. इन लेखकों में धड़क रही है और पूरी शिद्दत से. प्रस्तुत अंक की अन्य रचनाएं भी अच्छी हैं.

कमल

डी-१/१, मेघदूत अपार्टमेंट, मेरीन ड्राइव रोड,
कदमा, जमशेदपुर (झारखंड) ८३१००५

"कथाबिंब" के सफलतम २४ वर्ष पूर्ण करने पर मेरी आत्मीय बधाई स्वीकार कीजिए. अंक में छपी अशोक सिंह की कविताएं तथा राजेंद्र मोहन त्रिवेदी की लघुकथा ने अंतस को झनझनाकर रख दिया. कहानियां अभी पढ़ना शेष है.

कथाबिंब की यह स्तरीयता बरकरार रख पाना निःसंदेह एक चुनौती है, जिसे आपने साहसपूर्वक स्वीकार किया है, बधाई लें.

संजय कुमार आर्य

भा. जी. बी. निगम, घोसी, मऊ (उ. प्र.) २७५ ३०४

"कथाबिंब" का अक्तूबर-दिसंबर २००३ अंक मिला. लघुकथाएं, 'जमूरे', 'मनोवृत्ति', 'पढ़ाई', 'एक री-टेक और,' तथा 'शराफ़त उर्फ़ बीस रुपये', बहुत अच्छी लगीं. मुझे पहले से ही आशा थी कि अलका अग्रवाल सिगतिया की कहानी 'जब अरुंधि कहेगी...' का दूसरा भाग भी प्रथम भाग की तरह प्रभावशाली होगा. ग़ज़लें और कविताएं अच्छी हैं किंतु अक्षय गोजा की ग़ज़लें ठीक नहीं हैं. उनमें न तो रदीफ़-काफ़िया का ही ध्यान रखा गया है और न ही कोई प्रभाव-उत्पन्न करने वाला विषय ही है. ग़ज़ल छापने के पहले कृपया स्वयं देख लिया करें तो ठीक रहेगा.

हसन जमाल पर काफी प्रतिक्रियाएं पढ़ने को मिलीं. अब राष्ट्र के विषय में सही ढंग से सोचने वालों को सांप्रदायिक कहा जाने लगा है तो वह दिन दूर नहीं जब सेकुलर शब्द का प्रयोग गाली के रूप में होने लगेगा. यह देश जिन अल्पसंख्यकों के लिए धर्म निरपेक्ष बनाया गया है वे प्रायः अपने धर्म को सबसे ऊपर समझते हैं. इस देश की धर्म निरपेक्षता बहुसंख्यकों की कीमत पर टिकी हुई है. इस पर भी विचार होना चाहिए कि यदि आज के अल्पसंख्यक भविष्य में बहुसंख्यक हो जायें तो क्या तब भी यह देश धर्म निरपेक्ष रह जायेगा. संभवतः नहीं.

संसद में 'वंदे मातरम' पर विवाद करने वाले सेकुलर हैं और पूरे देश में एक साथ मातृभूमि की वंदना करने वाले सांप्रदायिक. सरकारी ख़र्चे पर रोज़ा-अफ़्तार करने वाले सेकुलर हैं. देश को शुद्ध सांप्रदायिक आधार पर विभाजित करनेवाले भी सेकुलर हैं. जबकि देश की एकता और अखंडता की बात करने वालों को सांप्रदायिक कहा जाता है. अब इस विषय पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए नहीं तो बहुत देर हो जायेगी.

नरसिंह नारायण

१३२६, विवेकानंद नगर,
सुलतानपुर (उ. प्र.) - २२८ ००१

"कथाबिंब" का अक्तू.-दिसं.'०३ अंक प्राप्त हुआ. विषम परिस्थितियों की जटिलताओं के बावजूद आप सबके समर्पित प्रयासों से यह अंक तीन माह में प्रकाशित हो सका. हार्दिक बधाई. ये प्रगति कथाबिंब के नियमितीकरण की दिशा में शुभ संकेत है.

अंक परंपरानुरूप समृद्ध और पठनीय है. कहानियां सभी अच्छी लगीं. लेकिन 'स्पर्श' ने विशेष प्रभावित किया.

'आमने-सामने' तो पत्रिका की पहचान है. काव्यपक्ष में कविताएं बाज़ी मार ले गयीं. अशोक सिंह और डॉ. कृष्ण बिहारी सहल की कविताएं ग़ज़लों पर भारी पड़ती हैं. अक्षय गोजा की ग़ज़लें बेहद कमजोर हैं.

राजेंद्र तिवारी

'तपोवन', ३८-बी, गोविंद नगर, कानपुर - २०८ ००६

❁ "कथाबिंब" का अक्तूबर-दिसंबर '०३ अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका में 'कुछ कही, कुछ अनकही' ने मेरे मन को छू लिया. बेहद पसंद आया. कहानी 'पानी के रंग', 'बरगद' तथा लघुकथाएं व आमने-सामने सहित सभी रचनाएं स्तरीय, प्रशंसनीय, पठनीय व ज्ञानवर्धक हैं. पत्रिका के संपादन की ज़ितनी प्रशंसा की जाय वो कम ही होगी.

पत्रिका नवोदित लेखकों को भी सम्मान सहित प्रकाशित कर रही है. यह आप सबकी उदार भावनाओं को प्रकट करता है.

✣ रामेश्वर प्रसाद गुप्ता 'इंदु'

बस स्टैंड, बड़ा गांव, झांसी (उ. प्र.) २८४ १२१

❁ "कथाबिंब" का अक्तूबर-दिसंबर '०३ का अंक प्राप्त हुआ. सर्वप्रथम इस कथा-पत्रिका के पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश पर हार्दिक बधाई और मंगल कामनाएं. तमाम विपरीतताओं के बावजूद आपने इसकी धारा को प्रवहमान बनाये रखा, यह बड़ी बात है. इस अंक के संपादकीय में आपने ठीक ही लिखा है कि आशावाद ही जीवन को ज़िंदा रखेगा. अतः कामना करता हूं कि तमाम वात्याचक्रों के बीच से गुज़र कर भी यह 'बिंब' निखरता रहे, निरंतर. मानवीय संवेदना को आकार देतीं प्रस्तुत अंक की सभी कहानियां अच्छी हैं. प्रायः हर कहीं निर्मम यथार्थ के दिग्दर्शन के बाद भी स्वस्थ प्रगतिशील चेतना आकार लेती मिली. जहां 'पानी के रंग' में आधुनिक स्थितियों का साक्षात्कार कराते हुए डॉ. दामोदर खड़से ने अंततः शाश्वत स्वस्थ मूल्यों की वकालत की है, वहां डॉ. निरुपमा राय की 'वध' के माध्यम से नयी चेतना को भी ताकत मिली है. एक ओर सत्तार मियां 'साहिल' की 'बरगद' में शन्नो के प्रति सत्तू की छोटी से छोटी धड़कन भी प्रभावित करने में समर्थ है तो दूसरी ओर 'पायदान पर' कहानी द्वारा श्री प्रदीप बिहारी जीवन में विषम स्थितियों को जी रहे लोगों के क्रम को सुखद आयाम देते हैं और श्री संजीव निगम की 'स्पर्श' भी सारी ऊहापोह के बीच अंततः संवेदनाओं की ऊष्मा का अहसास कराने में सफल हो जाती है. इन सबके बीच 'जब अरुषि कहेगी' (सुश्री अलका अग्रवाल) मुझे बेहतरीन कहानी लगी. तयशुदा वस्तु और संयोगों के संदर्भों के बाद भी मानवीय संवेदनाओं की सार्थक व्यंजना करती हुई इस लंबी कहानी के विन्यास का विकास अत्यंत सहजता से हुआ है. प्रस्तुत अंक में प्रकाशित लघुकथाएं भी वर्तमान स्थितियों के बीच मनुष्य की बदहाली के सशक्त संकेत भी देती हैं और असंगतियों पर प्रहार करती हैं. श्री अशोक 'अंजुम' की ग़ज़ल अच्छी लगी और श्री अशोक सिंह की चारों कविताएं किसी सोच को झिंझोड़ती हुई अनुभव हुईं. पुस्तक समीक्षाओं का स्तंभ, रचना का व्यापक संदर्भों में खुलासा करने के कारण उपलब्धि-परक है. कुल मिला कर पूरा अंक ही संपन्न अंक है.

✣ भगीरथ बड़ोले

२८६, विवेकानंद कॉलोनी, फ्री गंज,
उज्जैन (म. प्र.) - ४५६०१०

❁ "कथाबिंब" का अक्तूबर-दिसंबर '०३ का अंक मिला. धन्यवाद. एक ही बार में पूरी पत्रिका पढ़ गया. 'कुछ कही, कुछ अनकही', में आपने एक साथ कई सवालों को उठाया है.

इस अंक की अद्‌भुत कहानी है - सत्तार मियां 'साहिल' की 'बरगद'. इतनी क्लासिकल कहानी देने पर आपको और सत्तार मियां को हार्दिक-हार्दिक धन्यवाद और बधाई. 'पानी के रंग', 'पायदान पर', 'स्पर्श' और 'जब अरुषि कहेगी...' ने मन मोह लिया. 'पानी के रंग' को तो बार-बार पढ़ने का मन होता है और वह हर बार नयी लगती है. लघुकथाओं में 'जमूरे', 'गृहस्थी', 'पढ़ाई' और 'प्यार की उम्र नहीं' ने बहुत बहुत प्रभावित किया.

डॉ. कृष्ण बिहारी सहल और अशोक सिंह की कविताएं दिल को छू गयीं. इन कविताओं को पढ़कर शरीर में रक्त-संचार तीव्र हो गया. 'आमने-सामने' और 'पुस्तक-समीक्षा' स्तंभ अच्छे लगे. 'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार' का आयोजन कई मायनों में बहुत महत्वपूर्ण है.

इस बार आप मेरा ख़त ज़रूर शामिल करना वरना मैं आपके 'लेटरबॉक्स' में टाइमबम फिट कर दूंगा.

✣ एम. अयाज़ 'गुड्डू'

वार्ड नं. ११, सगमग, जुन्नारदेव,
जि. छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८० ५५१

❁ "कथाबिंब" का अक्तूबर-दिसंबर '०३ अंक प्राप्त हुआ. 'कथाबिंब' ने अपने प्रकाशन के २४ वर्ष पूरे कर लिये हैं और अब पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश किया है, यह गौरव की बात है. कुछ ही पत्रिकाओं को ऐसी लंबी आयु का सौभाग्य मिलता है. 'कथाबिंब' को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है तो इसके पीछे आपका त्याग और आपकी तपस्या है जिसके लिए आप साधुवाद और स्तुति के पात्र हैं. इन चौबीस वर्षों में आपकी उपलब्धियां अनेक स्तरीय और बहुआयामी हैं. निश्चय ही आपने समाज और साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की है. नये लेखकों और उनके सृजन को बहुमूल्य और व्यापक अवसर प्रदान किया है. आपकी इस साहित्यिक सेवा के लिए आपको जितना मान-सम्मान और सहयोग मिलना चाहिए था उतना शायद नहीं मिला है. यह एक खेदपूर्ण पहलू है. लेकिन आशा की जानी चाहिए कि वक़्त एक दिन आपके देय को आपको चुकायेगा. देर है पर अंधेर नहीं.

प्रदीप बिहारी की कहानी 'पायदान पर' तथा डॉ. निरुपमा राय की कहानी 'वध' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. अन्य कहानियां भी पठनीय और अच्छी हैं. लघुकथाएं भी अच्छी हैं. कविताएं और ग़ज़लें कमज़ोर न पड़ें इसलिए इन पर भी ध्यान अपेक्षित हैं.

✣ केशव शरण

एम २/५६४ सिकरौल, वाराणसी (उ. प्र.)- २२१ ००२

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ 'कथाबिंब' ने प्रकाशन के २५वें वर्ष में प्रवेश किया है. इस पड़ाव तक पहुंचने में हमें अनेकानेक लोगों का सहयोग मिला है. इस दौरान कई बार ऐसी परिस्थितियां भी आयीं जब यह लगा कि आगे पत्रिका चला पाना संभव नहीं है किंतु भाई हस्तीमल 'हस्ती', डॉ. उमाकांत बाजपेयी व अन्य कुछ मित्रों ने जोर दे कर कहा कि कुछ भी हो जाये 'कथाबिंब' निकलती रहनी चाहिए. विवश होकर कई बार संयुक्तांक भी निकालने पड़े किंतु यह तभी जब सामने कोई अन्य विकल्प नज़र नहीं आया. 'कथाबिंब' के रजत जयंती वर्ष में यथासंभव हमारी यह कोशिश है कि वर्ष के चारों अंक प्रकाशित हों.

●

इस अंक में वरिष्ठ कथाकार श्री जयनारायण की लंबी कहानी 'महाभिनिष्क्रमण' एक विशिष्ट कहानी के रूप में प्रस्तुत है. कहानीकार ने रहीम का प्रतीक लेकर देश की वर्तमान स्थिति को रेशा-रेशा करके सामने रखा है. जिस दौर से आज हम गुज़र रहे हैं, चाहे शहर हो या गांव युवतियां कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं. कहीं जोर-जबरदस्ती से या कहीं बहला-फुसलाकर उनका शोषण किया जाता है, उपालंभ कुछ भी हो सकता है. नये कहानीकार आलोक पांडेय की कहानी 'निर्मोही' एक 'शिक्षित' नवयुवक की कहानी है जिसने वासना के वशीभूत गांव की भोली-भाली सुमन को अपने जाल में फंसाकर धोखा दिया. यह सबका मानना है कि 'जानकारी तकनीकी' के वर्तमान युग में 'कनेक्टिविटी' बढ़ी है. आज 'मोबाइल फोन' लक्ज़री की अपेक्षा एक आवश्यकता बन गया है. अपनी कहानी 'राइट नंबर : रॉन्ग नंबर' में सूरज प्रकाश ने 'कनेक्टिविटी' के एक नये पहलू को उजागर किया है.

●

पिछले कुछ महीनों में देश की राजनीति ने एक बार फिर पलटा खाया है. यह एक ऐसा बदलाव है जिसकी किसी ने कल्पना नहीं की थी. न राजग ने सोचा था कि वे सत्ता में नहीं रहेंगे और न ही कॉन्ग्रेस ने सोचा था कि देश की बागडोर उसके हाथ में पुनः आ जायेगी. हार और जीत के कारण खोजना इतना आसान नहीं है. कॉन्ग्रेस और भाजपा को प्राप्त सीटों में केवल ८ का अंतर है और दोनों को अगर मिला दें तो लोकसभा की आधी सीटें ही हो पाती हैं. ऐसे में यह कहना कि जनादेश किसी एक दल को मिला है, ठीक नहीं लगता. सर्वथा यह एक खंडित जनादेश है. यदि एक-आध प्रांत को छोड़ दें तो जहां जो गठबंधन मजबूत था वह जीतकर आया. अब तक कॉन्ग्रेस गठबंधनों से बचती आयी थी, इसलिए वह अलग-थलग पड़ गयी थी. इस चुनाव में पहली बार कई दलों के साथ मिलकर कॉन्ग्रेस ने चुनाव लड़ा. उसको सबसे अधिक लाभ मिला आंध्र प्रदेश में. नहीं तो देखा जाये तो पिछले तीन चुनावों में कॉन्ग्रेस की सीटें ११० -१४० के आसपास ही रही हैं. राजग के कुछ साथी साथ छोड़ गये और तमिलनाडु का नया गठबंधन सफल नहीं हो पाया. जो परिणाम आये उससे मीडिया को अपनी भूमिका के बारे में गंभीरता से सोचना चाहिए. चुनाव से पूर्व और एक्ज़िट पोल के सर्वेक्षणों पर घंटों टीवी पर जुगाली करने का क्या अर्थ है ? आप कौन-सी जिम्मेदारी निभा रहे हैं ?

खंडित जनादेश का परिणाम यह रहा कि नयी सरकार बनने में काफी समय लग गया. पहले तो यही तय नहीं हो पाया कि गठबंधन में कौन शामिल होगा ? कौन अंदर से समर्थन देगा और कौन बाहर से ? उसके बाद सवाल आया कि गठबंधन का नेता कौन होगा ? दो-तीन दिनों तक सारा देश मैडम सोनिया गांधी की 'हां', 'न' का इंतज़ार करता रहा. प्रश्न उठा कि विदेशी मूल की होने के कारण सोनिया गांधी प्रधानमंत्री बन सकती हैं या नहीं ! स्वाभिमानी सुषमा स्वराज ने धमकी दे डाली कि यदि मैडम प्रधानमंत्री बनती हैं तो वे अपना सिर मुड़ा लेंगी और उमा भारती ने अपने मुख्यमंत्री पद को दांव पर लगा दिया. दरअसल, सवाल यह होना चाहिए कि सौ करोड़ से कुछ अधिक की जनसंख्या में क्या भारतीय मूल का एक भी व्यक्ति नहीं है जो भारत का प्रधानमंत्री बनने के योग्य है

●

उधर दिल्ली में 'ड्रामा' चल रहा था. कुछ लोग सड़कों पर बैठे थे, अपने कपड़े फाड़ रहे थे नहीं तो कनपटी पर पिस्तौल रखे थे. मीडिया कवरेज के लिए काफी मसाला था. फिर समाचार आया कि सोनिया जी ने प्रधानमंत्री के पद का 'त्याग' कर दिया है और अपने स्थान पर मनमोहन सिंह को नामजद किया है. अब तो कहना ही क्या था, टीवी के सामने आने की होड़ मच गयी. दो घंटों तक जिस तरह से चाटुकारिता भरे भाषण दिये गये उसका उदाहरण शायद ही कहीं इतिहास में ढूंढे मिलेगा. विरुदावली गाने के लिए शब्दकोष में शब्द कम पड़ रहे थे.

अंततः मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री की गद्दी पर आसीन हुए. इसके बाद मंत्रीपदों के लिए खींचातानी शुरू हुई. समर्थन देने वाले दलों केअनुपात के अनुसार मंत्रियों की संख्या तय हुई. लालू प्रसाद यादव के भाग्य से सींका टूटा. उनकी झोली में मनचाही रेल्वे मिनिस्ट्री आन गिरी. जो व्यक्ति मुकदमों के चलते 'जेल' जा चुका है और बिहार का मुख्यमंत्री नहीं बन सकता वह केंद्रीय मंत्री कैसे बन सकता है यह समझ से बाहर है. क्या पहले के सारे मुकदमें ख़ारिज हो गये हैं ? मीडिया क्यों चुप्पी साधे बैठा है ? सरासर, यह जनतंत्र का मखौल है.

●

बहरहाल, इस सरकार के पास गठबंधन को 'संयुक्त' बनाये रखने के अलावा सबसे बड़ी चुनौती यह है कि पिछले कुछ वर्षों में विकास के जो कार्य हुए हैं, देश की अर्थ-व्यवस्था में जो मजबूती आयी है उसकी गति धीमी न पड़े.

अरविंद

लंबी कहानी

महाभिनिष्क्रमण

जयनारायण

मैंने दूर से ही देख लिया रास्ते के किनारे गठरीनुमा कोई चीज़ हिल-डुल रही थी. गाड़ी के एक दूरी तक पहुंचते ही वह चीज़ आदमी की शक्ल ले चुकी थी, जो खड़ा होने की कोशिश कर रही थी. गठरी बने उस आदमी के शरीर में हरकत बढ़ती जा रही थी. वह जल्द-से-जल्द खड़ा होना चाहता था, मगर लाचार था. उसका शरीर उसका साथ नहीं दे रहा था. या तो वह बीमार था, या घायल. हो सकता है, किसी वाहन-चालक ने उसको धक्का मार दिया हो और बेचारे को अस्पताल पहुंचाने की बजाय रास्ते में मरने के लिए छोड़कर भाग गया हो. आजकल ड्राइवरों का शराब पीकर गाड़ी चलाना आम बात है.

मैं यह सोच ही रहा था कि हमारी कार उस आदमी के काफी नज़दीक आ गयी. वह आदमी बड़ी मुश्किल से अपना दायां हाथ उठाकर गाड़ी रुकने का इशारा कर पाया. ड्राइवर ने गाड़ी रोक दी.

मैं झट गाड़ी से उतर पड़ा. पीछे-पीछे ड्राइवर भी. चार खाने की लुंगी, लंबा लबादा और सिर पर एक विशेष प्रकार की टोपी थी उस व्यक्ति के शरीर पर. चेहरे की लंबी, सफेद दाढ़ी से बुज़ुर्गियत झलक रही थी.

'आपको क्या तकलीफ है ? आपने गाड़ी क्यों रुकवायी ?' - मैंने पूछा.

'बस थोड़ी चोट लग गयी है' - उन्होंने अपने दोनों घुटनों की तरफ इशारा किया.

मैंने देखा, उनके घुटनों के पास की लुंगी फट गयी थी. लुंगी को ऊपर सरकाते ही मैं लगभग चीख पड़ा - 'अरे, यह क्या, आप तो काफी घायल हैं. आपके घुटनों पर हड्डी निकल आयी है और आप कहते हैं - बस थोड़ी चोट लगी गयी है ?'

'इन्हें जल्दी गाड़ी में लादो. इनको जल्द ही किसी अस्पताल में भर्ती नहीं किया गया तो अनर्थ हो जायेगा' - मैंने ड्राइवर से कहा.

सबसे नज़दीक का कस्बा लगभग दस किलोमीटर था. इस राज्य के रास्तों की जो हालत है, उसमें दस किलोमीटर की दूरी तय करने में घंटों लग सकते हैं और रोगी की जो हालत थी, उस हालत में उसे कम से कम प्राथमिक उपचार तुरंत उपलब्ध होना चाहिए था. इसलिए मैंने एक चट्टी पर गाड़ी रुकवाकर एक डॉक्टर से संपर्क किया. डॉक्टर ने उन्हें कुछ टेबलेट्स खिलाये, सुई दी और घावों पर पट्टी बांधी और सलाह दी कि 'इन्हें जल्दी किसी अस्पताल अथवा नर्सिंग होम में भरती कराना चाहिए.'

गाड़ी के चलते ही बुज़ुर्ग सज्जन ऊंघने लगे. उनके चेहरे के भाव से लग रहा था कि अब वे काफी राहत महसूस कर रहे थे. धीरे-धीरे वे नींद में चले गये.

डॉक्टर की दवा अपना असर दिखा रही थी. मैंने चुपचाप उन्हें सो जाने दिया. यों उनके बारे में जानने की मेरे मन में बड़ी उत्कंठा थी.

कस्बा पहुंचकर मैंने उनको सरकारी अस्पताल में भरती करा दिया और दूसरे दिन फिर आने को कहकर उनसे विदा ली. वे विशेष कुछ बोल नहीं पाये. अपने दोनों हाथ जोड़कर कुछ बुदबुदाये. हो सकता है, उन्होंने कृतज्ञता से भरकर हमें दुआ दी हो.

दूसरे दिन मैं अपने ड्राइवर के साथ लगभग चार बजे उनसे मिलने गया. चलते वक्त मैंने उनके लिए कुछ फल भी ले लिये थे.

देखा वे बेड पर आंखें बंद किये लेटे थे. कमर में कल वाली वही फटी, खून लगी लुंगी थी. उनके दोनों घुटनों और बांयें हाथ की कुहनी पर पट्टी बंधी थी. हम वहां इतने निःशब्द खड़े थे कि हमारी उपस्थिति से बेखबर वे आंखें मूंदे लेटे रहे.

'बाबा शायद सो रहे हैं' - मेरे ड्राइवर ने धीरे से कहा. आवाज सुनकर बाबा ने आंखें खोल दीं. वे हमें आया देखकर बैठने की कोशिश करने लगे.

मैंने उन्हें मना कर दिया - 'आप लेटे रहें. अब आप कैसे हैं ? डॉक्टरों ने क्या कहा ? कुछ दवा वगैरह दी ?'

बाबा के तकिये के नीचे से एक कागज़ झांक रहा था. मैंने उसे उठाना चाहा तो बाबा ने मेरा हाथ पकड़ लिया - 'कुछ नहीं है, बस यों ही....' इस बार बाबा बोले.

कागज़ मेरे हाथ में था - 'अरे, ये तो डॉक्टर का प्रेस्क्रिप्शन है और आप कहते हैं, कुछ नहीं है ?' मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा.

हमें वहां देखकर पता नहीं कहां से एक मैला-कुचैला आदमी आ टपका - 'बाबा क्या आप लोगों के आदमी हैं ? ये आपके कौन हैं ?'

'हां, ये हमारे आदमी हैं. एक इंसान का दूसरे इंसान से

[redacted]

जो नाता होता है, वही हमारा नाता है, लेकिन आपका परिचय?' - मैंने उस आदमी से प्रति-प्रश्न किया.

'साहब मैं यहां का एक सफाई कर्मचारी हूं, अनपढ़. आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आयीं. आप सरकारी अस्पताल की हालत नहीं जानते ? साहब, यह कसाईखाना है, कसाईखाना. यहां आदमी निरोग होने के लिए नहीं, मरने के लिए आते हैं. देखते हैं, पूरा वार्ड खाली है. जो दो-चार रोगी हैं, उनको देखने वाले न डॉक्टर हैं, न नर्सें. सभी डॉक्टर अपनी-अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस में लगे हैं या अपने नर्सिंग होम चलाते हैं. जो दवाइयां सरकार देती है, वे बाजार पहुंचा दी जाती हैं. रोगियों को बाजार से दवाइयां खरीदनी पड़ती हैं. कोई एक डॉक्टर आता है और दवाइयां लिखकर चला जाता है. उसे यह देखने की फुर्सत नहीं है कि रोगी की दवा खरीदने की औकात है भी या नहीं. आप ही बताइए साहब, कोई पैसावाला आदमी सरकारी अस्पताल में आयेगा ? रोगी से ये लोग सीधे मुंह बात तक नहीं करते. अगर कोई रोगी या उसका रिश्तेदार कुछ जानना चाहता है, तो उसको ये लोग डपट देते हैं, मगर इनके नर्सिंग होम या प्राइवेट क्लीनिक में जाइए, तो इनके मुंह से फूल बरसता पाइयेगा. ये ऐसे हंस-हंसकर बातें करते हैं कि इनके असली चेहरे को आप पहचान नहीं पायेंगे. पता नहीं, भगवान के यहां ये लोग क्या जवाब देंगे. मैं फिर कहता हूं, साहब अगर आप लोग बाबा को ज़िंदा देखना चाहते हैं तो इन्हे किसी नर्सिंग होम में ले जाइए. उस आदमी ने ये बातें रुक-रुककर और धीरे-धीरे कहीं. शायद उसको डर था कि अगर कोई सुन लेगा तो अफसरों से उसकी शिकायत कर देगा.

वह मैला-कुचैला आदमी बोलते-बोलते थोड़ी देर के लिए रुका, मानो सांस ले रहा हो. फिर एक बार दरवाजे की तरफ देखा, जहां दो-तीन कुत्ते आराम से सो रहे थे. वह फिर बोलने लगा - 'साहब, हमें पांच महीने से पगार नहीं मिली. कहते हैं, सरकार के पास पैसे नहीं हैं, जब होगा तो तनख्वाह मिलेगी. आप ही कहिए साहब, कोई पेट पर गमछा बांधकर कितने दिनों तक काम करे ? आखिर हमारे भी तो बाल-बच्चे हैं, फिर भी मैं बिना नागा शाम को आ जाता हूं. रोगियों की दवा-दारू नहीं कर सकता तो क्या, उनसे दो मीठे बोल बोलकर, उनकी कुछ सेवा करके उनको कुछ राहत तो पहुंचा सकता हूं. बाकी सारे दिन मैं और मेरी घरवाली शहर में घूम-घूमकर बाबू लोगों के घरों में सफ़ाई का काम करते हैं. हम तो जहां भी जायेंगे, हमसे तो लोग यही काम करायेंगे न ? आखिर हम नीच डोम-हलखोर जो ठहरे ! अब कोई हमारी औरत से बर्तन-बासन तो करायेगा नहीं. मेरा एक लड़का है, वह दसवीं में पढ़ता था. घर की हालत से वह अनजान नहीं था. एक दिन कहने लगा - बाबूजी अब मैं नहीं पढ़ूंगा. घर की हालत मुझसे देखी नहीं जाती.'

'मैंने उससे डपटकर पूछा कि पढ़ोगे नहीं तो करोगे क्या ?'

जयनारायण

जन्म : १९३७ में बावनडीह, जिला - सिवान (बिहार); शिक्षा : कला स्नातक

वरिष्ट कवि, कहानीकार एवं रचनाकार

तीन पुस्तकें प्रकाशित, लगभग ६ संग्रहों में रचनाएं संग्रहित. लघुपत्र 'अस्वीकार' एवं 'समर काल' का संपादन.

'जयनारायण' किसी वाद के खूंटे से बंधा कोई नाम नहीं है. तथाकथित प्रगतिशीलों से पृथक मगर अपनी रचनाशीलता में उनसे भी धारदार रचनाकार का नाम है 'जयनारायण'. बातचीत और गोष्ठियों में जन-पक्षधरता की बातें करने वालों से अलग जयनारायण की यह चिंता नहीं है कि उन्हें 'प्रगतिशील' माना जायेगा या प्रतिगामी ! इनकी प्रतिबद्धता उन लोगों के प्रति है, जो दलित हैं, वंचित हैं, और सदियों से समाज के हाशिये पर फिंके हैं. कबीर, मुक्तिबोध, नागार्जुन और धूमिल की परंपरा को आगे बढ़ाने वाला यह रचनाकार फक्कड़ अंदाज में बिना किसी शोर-शराबे के 'अभिव्यक्ति के खतरे' उठाता है. प्रगतिशीलता का जामा पहनकर पौराणिक नायकों को चौराहे पर खड़ा करना निरापद व सुरक्षित तरीका हो सकता है, किंतु आधुनिक (खल) नायकों को अपनी रचना का उपादान बनाने से कतराना स्वयं लेखक को ही चौराहे पर खड़ा कर देता है.

जयनारायण की भाषा कबीरी है. ये भाषा के आभिजात्य के दुराग्रह से बचते हुए अपनी रचना को पाठकों तक ले जाते हैं.

'मैं कुछ भी करूंगा, मगर अब पढ़ूंगा नहीं. वैसे भी पढ़कर तो नौकरी मिलने से रही.'

और जानते हैं, साहब अब वह स्टेशन पर जूता पॉलिश करता है. मुझमें इतनी ताकत नहीं थी कि मैं उसको रोक पाता. पैसे से ही तो ताकत आती है न, साहब ! आप तो जानते हैं, साहब, कि जूता पॉलिश करने वाले छोकड़े आवारा होते हैं, तरह-तरह का नशा करते हैं. मुझे डर है, कहीं मेरा बेटा भी....'

वह कहते-कहते रुक गया. किसी अनिष्ट की कल्पना करके वह भीतर तक कांप गया था.

इसी बीच वार्ड के एक कोने से किसी रोगी के कराहने की आवाज आयी. वह आवाज की दिशा में बढ़ गया.

मैंने वार्ड में एक नज़र डाली. पूरा वार्ड कबाड़खाना लग रहा था. छत, कोने-अंतरे सभी मकड़ी के जालों से भरे थे, फर्श पर कूड़ा बिखरा था. लगता था हफ्तों से झाड़ू नहीं लगी थी. दीवारों पर थूक और खंखार के चकत्ते साफ़ दिख रहे थे. बिल्डिंग की जरजर हालत देखने वालों के मन में दहशत पैदा कर रही थी.

मैं अस्पताल की हालत देखकर सिहर उठा. यह अस्पताल है या नर्क का कुंड. मैंने मन-ही-मन सोचा. यह आदमी ठीक ही तो कहता है - यह अस्पताल नहीं, कसाईखाना है. यहां लोग निरोग होने नहीं, मरने आते हैं.

मैंने उस आदमी की तरफ देखा, जिसे पांच महीने से तनख्वाह नहीं मिली थी, फिर भी रोज़ रोगियों की सेवा में किसी फ़रिश्ते की तरह लगा हुआ था.

मैंने उसे आवाज़ देकर बुलाना चाहा, मगर वह एक रोगी को सहारा देकर बाथरूम की तरफ लिये जा रहा था.

बाबा अब भी चित्त लेटे थे. शायद अब भी उनकी पीड़ा कम नहीं हुई थी. वे बातें करने की स्थिति में नहीं थे. बहुत तकलीफ़ के साथ एक-दो शब्द बोल पा रहे थे. मेरी उनके बारे में जानने की इच्छा थी, मगर उनकी हालत देखकर मैं चुप रहा. बाबा को बेहतर इलाज की ज़रूरत थी. वे अगर इस अस्पताल में रहे, तो इन्हें निरोग होने में महीनों लग जायेंगे. और अगर इस मैले-कुचैले आदमी की बात को सही माने तो क्या हम बाबा को सही-सलामत यहां से वापस ले जा सकेंगे ? उसके अनुसार यहां लोग निरोग होने नहीं... और इसके आगे मैं सोच नहीं सका.

'तो फिर आपने क्या सोचा' - वह आदमी रोगी को उसके बिस्तर पर पहुंचाकर फिर हमारे सामने खड़ा था.

'हमें जल्दी करनी चाहिए. बाबा के घाव अच्छे नहीं हो रहे हैं. ये काफी तकलीफ़ में हैं' - मैंने अपने ड्राइवर और उस आदमी की तरफ देखते हुए कहा.

'हां, जल्दी करनी चाहिए. देरी करना रोगी के हक में अच्छा नहीं होगा' - वह आदमी बोला.

मेरे ड्राइवर ने भी उसके समर्थन में सिर हिलाया.

'बाबा, ज़रा बैठिए.'

बाबा ने मेरी बात से अपनी मुंदी आंखें खोलीं और हाथ और आंखों के इशारे से पूछा - किसलिए ?

'आपको यहां से चलना है किसी नर्सिंग होम में. आप यहां अच्छे नहीं होंगे. देखते नहीं हैं, यहां न डॉक्टर हैं, न नर्सें हैं, न कोई इंतजाम है. दो दिन हो गये, आपकी हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा.'

'नहीं... मैं यहीं... अच्छा हो जाऊंगा. मुझे... आह! यहां... रहने... दीजिए.' - बाबा बड़ी मुश्किल से बोल पाये. बोलते वक्त दर्द उनके चेहरे पर उभर आया था.

'नहीं बाबा, हम आपको इस तरह यहां मरने के लिए नहीं छोड़ सकते' - मेरे ड्राइवर ने बाबा को समझाने की कोशिश की.

'हां बाबा, साहब ठीक कह रहे हैं. आप यहां अच्छा नहीं हो सकते' - उस मैले-कुचैले आदमी ने भी हमारा साथ दिया.

'मैंने आपको अस्पताल से रिलीज करवा लिया है. अब आपको यहां से चलना है,' - मैंने बाबा के सामने रिलीज के कागज़ लहराते हुए कहा और अपने ड्राइवर और उस आदमी को इशारा किया.

मैंने बाबा के सिर में और उन दोनों ने उनके दोनों हाथ और पीठ में सहारा देकर बेड पर बिठा दिया.

बाबा विरोध करते रहे - 'मुझे यहीं रहने... आह... दीजिए! मैं कहीं... नहीं... आह... जाऊंगा !'

हमने उनकी एक न सुनी. वे विरोध करते रहे. मगर हम उन्हें लेकर अस्पताल से बाहर आ गये.

गाड़ी में बाबा को लिटाकर वह आदमी मुझे नमस्कार करके जाने लगा.

'रुको' - मैंने उसको हाथ के इशारे से पास बुलाया - 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम वैसे तो कालीचरण है, साहब, लेकिन लोग मुझे कलुआ कहते हैं.'

मैंने सौ रुपये का एक नोट उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा - 'इसे रख लो कलु... काली चरण.'

'साहब, आप ये क्या कर रहे हैं. आखिर मैंने किया ही क्या है, जो आप मुझे रुपये दे रहे हैं. मैं... मैं.. भला !' कालीचरण असमंजस में था.

'ये कुछ नहीं है कालीचरण. तुम्हारी इंसानियत के आगे ये तुच्छ है. तुम फ़रिश्ते हो.' - और मैंने नोट उसकी जेब में ठूंस दिया.

कालीचरण की आंखें डबडबा आयी थीं. शायद ज़िंदगी में पहली बार किसी ने उसको 'काली चरण' कहा था.

'मैं भगवान से प्रार्थना करूंगा कि तुम्हारी पगार जल्दी मिल जाय,' - कहकर मैंने ड्राइवर को गाड़ी स्टार्ट करने का इशारा किया.

'साहब, भगवान से एक प्रार्थना और कीजिएगा कि मेरा बेटा बुरी सोहबत में न पड़े.' - वह भर्राये गले से बोला और अपने दोनों हाथ जोड़ दिये.

उसने गाड़ी में लेटे बाबा को तसल्ली दी - 'बाबा, आप जल्दी से अच्छे हो जायेंगे.'

तो चलूं साहब.'

'चलो' - मैंने ड्राइवर से कहा.

जाती हुई गाड़ी में से मैंने देखा कालीचरण गमछे से आंखें पोंछते हुए हमारी तरफ ही देख रहा था.

❑ नर्सिंग होम में कोई विशेष असुविधा नहीं हुई. जाते ही सारा काम चुटकियों में हो गया. बाबा को स्ट्रेचर पर लिटाकर चेकअप के लिए एक कक्ष में ले जाया जा चुका था. हमने काउंटर पर बैठी महिला रिसेप्शनिस्ट से रोगी से मिलने की इच्छा जाहिर की, तो उसने इंटरकॉम पर किसी से बात करने के बाद हमसे कहा कि आप लोग कल सुबह दस बजे आयें. वैसे चिंता की कोई बात नहीं है.

दूसरे दिन मैं नियत समय पर नर्सिंग होम अपने ड्राइवर के साथ पहुंचा. बाबा अपने केबिन के बेड पर बैठे चाय पी रहे थे. उनका घुटनों से नीचे झूलता लबादा और खून से सनी लुंगी गायब थी और उनकी ज़गह हल्के ब्ल्यू रंग के कुर्ता-पायजामा में बाबा काफी फब रहे थे. पहली नज़र में तो हम उन्हें पहचान ही नहीं पाते, मगर उनकी सफेद दाढ़ी ने हमारी मदद की, जो पंखे की हवा में धीरे-धीरे हिल रही थी. चाय पीते हुए बाबा काफी प्रसन्न दिख रहे थे.

'अब कैसे हैं, बाबा ?' मैंने केबिन में घुसते ही पूछा.

'बहुत अच्छा हूं, बेटा.'

मैंने ख्याल किया, बाबा आज अच्छी तरह बोल रहे थे. कल के समान आज उन्हें तकलीफ़ नहीं थी.

मैंने ड्राइवर को बाबा के पास छोड़कर उसी फ्लोर पर एक किनारे बैठकर बातें करती नर्सों में से एक से रोगी की हालत जाननी चाही.

'केबिन नंबर प्लीज ?' उसने पूछा.

'चौदह,' - मेरा संक्षिप्त-सा उत्तर था.

'चिंता की कोई बात नहीं है. उन्हें गंभीर चोटें आयी थीं. मगर भगवान की दया से हड्डियों में कोई फ्रैक्चर वगैरह नहीं है. एक्स-रे रिपोर्ट में सब कुछ क्लियर है.' नर्स फाइल पलटते हुए एक सांस में बोल गयी, बिना मेरी तरफ ताके.

'कितने दिन उन्हें यहां और रहना होगा, सिस्टर.'

'यही कोई तीन-चार दिन. हां, उन्हें कुछ दिनों तक बेडरेस्ट देना होगा. घुटनों का मामला है न. वैसे आप शाम को तो रोगी से मिलने आयेंगे न ?'

'तो ठीक है. शाम को डॉ. सिंह रहेंगे. वे आपको डिटेल में सब कुछ समझा देंगे.'

केबिन में आया तो देखा कि बाबा मेरे ड्राइवर से हंस-हंसकर बतिया रहे हैं.

मैंने बेड के नीचे से स्टूल खींचकर बैठते हुए कहा - 'चिंता की कोई बात नहीं है. एक्स-रे रिपोर्ट से पता चल गया है. आप जल्द ही अच्छे हो जायेंगे.'

सामान्यतः इस ख़बर से बाबा को खुश हो जाना चाहिए था, मगर वे चुप थे और सामने रखे हुए खाली कप को निहार रहे थे.

मैं इस ख़बर की प्रतिक्रिया बाबा के चेहरे पर देखना चाहता था, मगर वहां एक गंभीर उदासी और असमंजस के भाव आकर ठहर गये थे.

'बेटा, यह तुमने क्या किया. मुझे उसी सरकारी अस्पताल में छोड़ देते,' - वे अपने आप में लौटते हुए बुदबुदाये.

'मैं आपको उस अस्पताल में कैसे छोड़ देता ? सुना नहीं आपने, वह आदमी, क्या तो नाम था उसका, हां, याद आया, काली चरण, क्या कह रहा था.... ?'

'यही न कि लोग यहां मरने के लिए आते हैं. क्या होता, अगर मैं मर ही जाता. देश के लाखों लोग इसी तरह इलाज के अभाव में जानवरों की तरह मरते हैं... अब मैं इतने महंगे इलाज का खर्च कहां से उठाऊंगा !' इन शब्दों में बाबा की बेचारगी और दीनता साफ़ झलक रही थी, बाबा जिसे अब तक छिपाना चाहते थे. बाबा उस जवान, गरीब विधवा-से लग रहे थे, जिसकी लज्जा लाख कोशिशों के बावजूद फटी साड़ी से झांक ही जाती है.

'आप इसकी चिंता क्यों करते हैं ?' मैंने बाबा के दोनों हाथ थामकर आश्वस्त करना चाहा.

उनकी अंगुलियों में मंद-मंद कंपन हो रहा था. बाबा भावावेश में थे. उनकी पनियाई आंखें उनकी मनःस्थिति की गवाही दे रही थीं.

'बाबा, हमें अब कुछ दूसरी बातें करनी चाहिए. खर्चे वगैरह की बात को एकदम दिमाग से निकाल दीजिए आप.'

बाबा मेरी तरफ प्रश्नवाचक निगाहों से देखने लगे थे.

'बाबा, आप कौन हैं ? आपकी वैसी हालत किसने की थी ?'

'मैं भी एक इंसान हूं बेटा ! किस्मत का मारा ! नहीं तो...' वे कहते-कहते रुक गये थे.

'बाबा, आप कहते जाइए.'

'मेरा नाम अब्दुल रहीम खानख़ाना 'रहीम' है. तुम चाहो तो मुझे 'रहीम' भी कह सकते हो. मैं बादशाह अकबर के नवरत्नों में था...'

मुझे अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ. मैं आवेश में बोल पड़ा - 'तो आप ही 'रहीम' हैं, जिनके दोहे पढ़कर हम बड़े हुए हैं और आनेवाली पीढ़ियां भी आपको पढ़ते हुए बड़ी होंगी,' - कहते हुए मैंने उनके पांव पकड़ लिये.

बाबा रहीम के चेहरे पर व्यंग्य-मिश्रित मुस्कान खेल रही थी - 'हां, मैं वही रहीम हूं.'

'मैंने आपको कभी देखा नहीं है, इसलिए पहचान नहीं पाया. मुझे माफ़ करें. आप तो मुंबई में थे. मैंने किसी अख़बार में पढ़ा था कि वहां आप फिल्मों में गीत-सवांद-लेखन इत्यादि करते हैं.'

'तुमने ठीक ही पढ़ा था, बेटा ! दुनिया में जीने के लिए समझौते तो करने ही पड़ते हैं न !'

मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया.

बाबा बोलते रहे - 'मधुकरी खाते-खाते तंग आ चुका था. बुढ़ापे के कारण चलने-फिरने में भी तकलीफ़ हो रही थी. दस कदम चलने पर घुटनों में दर्द होने लगता था...'

'मधुकरी ?'

'हां, हां, मधुकरी. अकबर के दरबार से निष्कासित होने के बाद से मैं 'मधुकरी' पर ही तो ज़िंदा था. बेटा, तुमने मेरा वह दोहा पढ़ा ही होगा - *यह रहीम घर-घर फिरे, मांगि मधुकरी खाहि...*'

'यारो ! यारी छोड़िए, अब रहीम वो नाहिं,' मैंने अगली पंक्ति पढ़ दी तो बाबा मुस्कराने लगे. उनकी दाढ़ी से ढंके चेहरे पर आत्म-संतोष की दीप्ति साफ़ झलक रही थी.

बाबा थोड़ी देर रुके, फिर हाथ के इशारे से पानी मांगा. मेरे ड्राइवर ने ग्लास में पानी डालकर उन्हें थमा दिया.

पानी पीकर ग्लास को बगल की तिपाई पर रखकर वे बोलने लगे - 'इसी बीच एक दिन एक ऐसे व्यक्ति से भेंट हुई, जो फिल्म निर्माता था. मेरा परिचय पाकर वह बड़ा खुश हुआ और दूसरे दिन वह मुझे लेकर हवाई जहाज से मुंबई चला गया...'

'लेकिन आप यहां इस राज्य में अचानक.... ?'

उन्होंने मुझे हाथ के इशारे से बीच में ही रोक दिया, जिसका अर्थ था कि धैर्य रखो, मैं सब कुछ बतलाऊंगा.

'बेटे जब मैं बोलूं तो बीच में मत टोका करो. बूढ़ा हो गया हूं न. याददाश्त कमजोर हो गयी है. चीज़ें तुरंत दिमाग से फिसल जाती हैं. विषयांतर हो जाता है... हां, तो मैं क्या कह रहा था ?...'

बाबा बातों का सूत्र भूल चुके थे.

'आप कह रहे थे कि वह फिल्म-निर्माता आपको हवाई जहाज़ से मुंबई ले गया,' -मैंने बाबा यानि 'रहीम' को याद दिलायी.

'हां-हां, याद आ गया,' - वे उस बच्चे के समान खुश हो गये, जिसके गैस-बैलून की छूटी हुई डोर फिर से हाथ में आ गयी हो. 'हां, तो मैं उस फिल्म-निर्माता के साथ हवाई जहाज से मुंबई चला गया. ज़िंदगी में पहली बार हवाई जहाज पर चढ़ा था न. मन में बड़ी फुरफुरी हो रही थी.' - बाबा कहते-कहते क्षणभर को रुके. उनके चेहरे पर बच्चों वाली शरारती मुस्कान थी और वे मेरा मुंह निहार रहे थे.

प्रतिक्रिया में मेरे चेहरे पर हल्की मुस्कान उभर आयी.

'हां, तो बेटे उस निर्माता ने मुंबई के एक अभिजात इलाके के एक सुसज्जित फ्लैट में मुझे ठहराया. मेरी बड़ी आवभगत हो रही थी. वास्तव में वह निर्माता मेरी लोकप्रियता का व्यावसायिक उपयोग करना चाहता था. बाद में मुझे पता चला कि मेरे पड़ोस की बिल्डिंग में ही प्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन रहते हैं. एक दिन मैं उनके फ्लैट में उनसे मिलने गया. वे बड़े ही व्यवहार-कुशल और मिलनसार इंसान लगे. वे मेरे नाम से वाकिफ़ थे,

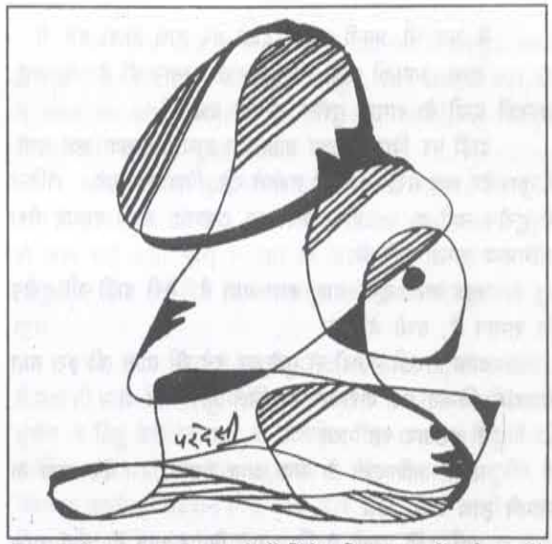

अतः उनसे जान-पहचान बढ़ाने में विशेष दिक्कत नहीं हुई. उन्होंने गर्म-जोशी से मेरा स्वागत किया, चाय-नाश्ता कराया और मेरे साथ बैठकर प्रसिद्ध अभिनेत्री माधुरी दीक्षित की एक फिल्म देखी. वे उस अभिनेत्री पर पागलपन की हद तक फिदा थे. उन्होंने बतलाया कि वे उस फिल्म को बासठ बार देख चुके हैं और अभी आगे कितनी बार देखेंगे, कह नहीं सकते. वे उस अभिनेत्री में एक भारतीय नारी की संपूर्ण प्रतिमा देख रहे थे और उस पर वे एक चित्र-श्रृंखला भी बना रहे थे. उसके बाद तो मैं जब भी हुसैन से मिलने गया, वे या तो माधुरी दीक्षित का चित्र बना रहे होते, या उसकी वही फिल्म देख रहे होते. हुसैन का इस उम्र में एक अभिनेत्री पर इस तरह फिदा होना किसी के लिए भी अचरज की बात हो सकती है. इस ख़बर को मीडिया खूब चटखारे लेकर परोस रहा था और हुसैन इससे बेपरवाह थे, बल्कि कहूं, वे इसको 'इंज्वाय' कर रहे थे. उन्हें मुफ्त में प्रचार मिल रहा था.'

यह कहकर बाबा थोड़ा रुके. वे अपनी दाढ़ी पर हाथ फिरा रहे थे.

'बाबा, पानी पियेंगे ?' मेरे ड्राइवर ने पूछा, जो खड़े-खड़े बाबा की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था.

बाबा ने इंकार में सिर हिलाया.

'बाबा शायद थक गये हैं. अब हमें इन्हें आराम करने देना चाहिए,' - मैंने ड्राइवर की तरफ देखते हुए कहा.

'अरे नहीं भाई, मैं थका-वका नहीं हूं. आज तो मैं बोलने-बतियाने के मूड में हूं. कई दिनों के बाद आज अच्छा महसूस कर रहा हूं.'

बाबा सच कह रहे थे. वे आज बड़े प्रसन्न दिख रहे थे. बार-बार चेहरे पर उभर आने वाली चोट की पीड़ा आज गायब थी.

वे अब भी अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फिरा रहे थे.

'बाबा, आपकी दाढ़ी भी हुसैन के समान ही है, या कहूं, आपकी दाढ़ी के समान हुसैन की भी दाढ़ी है.'

दाढ़ी पर फिरता हुआ बाबा का हाथ अचानक रुक गया. वे कुछ देर तक मेरी आंखों में ताकते रहे, फिर बोल पड़े - 'लेकिन मैं हुसैन नहीं हूं,' - और फिर एक ठहाका. बाबा शायद मेरा अभिप्राय समझ गये थे.

'खूब कही तूने, वाह क्या बात है. मेरी दाढ़ी भी हुसैन के समान है, क्यों बेटे ?'

बाबा तिरछी नज़रों से मुझे घूर रहे थे. बाबा की इस बात में व्यंग्य-विनोद एवं परिहास के मिले-जुले भाव थे.

मैं कटकर रह गया.

'बाबा, अशिष्टता के लिए क्षमा चाहूंगा,' - मैंने बाबा के सामने हाथ जोड़ दिये.

'नहीं, मुझे खुशी है कि तुममें विनोद-भाव है, वर्ना आज की भागदौड़ वाली ज़िंदगी में विनोद तो हमारी ज़िंदगी से लुप्त ही हो चुका है. मुझे तुम्हारा यह विनोद अच्छा लगा. वाह क्या बात है !'

बाबा सचमुच अब भी प्रशंसा किये जा रहे थे. बाबा किसी की प्रशंसा करने के मामले में कभी कृपण नहीं रहे. मुझे याद आयी वह घटना जब बाबा यानि रहीम, बादशाह अकबर के सेनापति थे. उन दिनों उनकी सेना का एक जवान विवाह करने के लिए छुट्टी पर गया था. छुट्टी ख़त्म होने पर जब सैनिक काम पर जाने लगा, तो वियोग-विह्वल नवोढ़ा ने सैनिक-पति को कागज़ का एक टुकड़ा थमाते हुए कहा था - 'इसे अपने सेनापति रहीम को दे देना.'

टुकड़े पर लिखा था - 'प्रेम-प्रीति का बिरवा चल्यो लगाय. सींचन की सुधि लिज्यो, मुरझि न जाय.'

बाबा यानि रहीम उसको पढ़कर 'वाह-वाह' कह उठे थे, ठीक आज की तरह. रहीम इन पंक्तियों में छिपी नवोढ़ा की वियोग-वेदना तक पहुंच चुके थे. उन्होंने सैनिक को ढेर-सारा धन देकर पुनः घर भेज दिया. बाबा की बेगम ने भी अपने अंग-भूषण उतारकर नवोढ़ा सैनिक-पत्नी के लिए उपहार-स्वरूप दिये थे. बाद में बाबा यानि रहीम ने इसी बरवै छंद में काव्य-रचना भी की.

'बाबा, आप तो दूसरों की प्रशंसा करने के मामले में इतिहास-प्रसिद्ध हैं. आप अपनी सैनिक-पत्नी की काव्य-पंक्तियों पर ठीक इसी तरह रीझे थे.'

बाबा को कुछ याद आ गया. वे इतिहास में लौट गये - 'प्रेम प्रीति का बिरवा चल्यो लगाय. सींचन की सुधि लिज्यो, मुरझि न जाय' - वाह क्या पंक्तियां थीं ! सचमुच उन पंक्तियों ने मुझे विचलित-विगलित कर दिया था.'

बाबा धीरे-धीरे बोले जा रहे थे. वे इतिहास बन चुके उस क्षण को भरपूर जी लेना चाहते थे.

'बाबा, अब काफी देर हो चुकी है. आप आराम करें, हम शाम को फिर आयेंगे. डॉक्टर से मिलना है. आपकी हालत के बारे में जानकारी लेनी है.'

'क्यों ? अब तो मैं चंगा हो चुका हूं, बेटे. मुझे यहां से जल्दी ले चलो. यहां अच्छा नहीं लगता,' - बाबा बच्चों के समान हठ पर उतर आये.

❑

बाबा की ज़िद को देखते हुए मैं उन्हें दूसरे दिन ही नर्सिंग होम से रिलीज करवाकर घर लेकर चला आया. डॉ. सिंह ने भी कहा था कि अब मरीज घर जा सकता है. लगभग एक हफ्ता तक दवा लेनी होगी और दस-पंद्रह दिनों तक चलने-फिरने से परहेज करना होगा.

घर पहुंचते ही बाबा लंगड़ाते-लंगड़ाते बच्चों के समान खुश-खुश मेरे घर के सारे कमरों को घूम-घूमकर देख आये. मेरे स्टडी-रूम में किताबों-पत्रिकाओं को देखा - 'हूं ! तो तुम भी साहित्य में रुचि रखते हो.'

'थोड़ी बहुत बाबा.'

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'जयनारायण.'

'अब समझा. तभी तुम... बहू कहां है ?'

'वह रसोई में है. आपके लिए चाय बना रही है.'

'मेरे लिए बहू को तकलीफ़ देने की क्या ज़रूरत थी ? अभी तो हम आ ही रहे हैं. थोड़ी देर बाद चाय पीते.'

पत्नी सुष्मिता दो कप चाय लेकर आयी और टेबल पर रखकर आंचल से सिर ढंककर बाबा के चरणों पर झुक गयी.

'जियो, खुश रहो, भगवान तुम्हें लंबा सुहाग दे,' - बाबा ने पत्नी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और एक कप उठाकर खड़े-खड़े चाय पीने लगे.

'बाबा कुर्सी पर बैठकर आराम से चाय पीजिए,' - मैंने उनके आगे एक कुर्सी सरका दी.

'बच्चे कितने हैं ?' बाबा ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा ?

'दो हैं, बाबा. एक लड़का और एक लड़की.'

'वे कहां हैं ? उनसे मिलवाओगे नहीं ?'

'बाबा की बात सुनकर सुष्मिता हंसने लगी.'

'बहू क्यों हंस रही है ?' बाबा को कुछ समझ में नहीं आ रहा था.

'बच्चे आपकी दाढ़ी देखकर डर से भागकर लॉन में छिपे हैं,' - सुष्मिता ने हंसते हुए कहा.

'तो ये बात है ! तब तो कुछ करना पड़ेगा,' - बाबा भी हंस पड़े.

❑ पता नहीं, बाबा ने ऐसा कौन-सा जादू कर दिया कि मेरे दोनों बच्चे उनका साथ ही न छोड़ें.

मेरी बेटी 'किरण' जिसकी उम्र तीन साल की थी, उनकी गोदी से उतरना ही नहीं चाहती थी. बाबा की दाढ़ी से उसे विशेष लगाव हो गया था. वह उनकी गोदी पर अपना हक समझने लगी थी. बेटे 'किंशुक' को बाबा के बगल में बैठकर ही संतोष करना पड़ता था. बेटी 'किरण' की नज़र में बाबा की दाढ़ी एक बेकार की चीज़ थी, इसलिए वह उसे नोचकर फेंक देना चाहती थी. उसकी ऐसी हरकतों पर बाबा 'हो-हो' कर हंस पड़ते.

उनकी हंसी सुनकर पत्नी सुष्मिता रसोई से दौड़ी आती और बच्चों को झिड़कती हुई बाबा की गोदी से उतारने लगती - 'चलो, उतरो गोदी से. बाबा को तंग मत करो. नीचे फर्श पर खेलो. बाबा को चोट लगी है न.'

इस पर बाबा सुष्मिता को झिड़क देते - 'बहू, तुम जाओ, अपना काम करो इन्हें मेरे पास छोड़ दो. ये मुझे तंग नहीं करते. मुझे इस सुख से वंचित मत करो. यह सुख मुझे सदियों बाद मिला है,' - यह कहते-कहते बाबा आत्मलीन हो जाते और स्वगत कुछ बोलने लगते.

बाबा के आ जाने से घर का माहौल ही बदल गया था. सुष्मिता बच्चों की तरफ से अब निश्चिंत हो चुकी थी. उसे अब काम छोड़कर रसोई घर से बार-बार बाहर झांकना नहीं पड़ता था कि बच्चे लॉन में खेलते-खेलते कहीं गेट खोलकर रास्ते में तो नहीं निकल गये. अब इसकी जिम्मेवारी बाबा ने उठा ली थी. मैं भी अब कंपनी के सेल्स प्रमोशन के काम से बाहर निश्चिंत होकर जा सकता था.

उस दिन रविवार था. सुबह के आठ बजे होंगे. मुझे बाहर नहीं जाना था. बच्चे सभी सो रहे थे. मैंने सुष्मिता को आवाज दी - 'जल्दी से दो कप चाय देना,' - और मैं बाबा के बेड के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गया - 'बाबा, आप तो जानते ही हैं कि मैं कंपनी के काम से प्रायः टूर पर रहता हूं. मेरे नहीं रहने से आपको किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं होती,' - मैंने बाबा से पूछा.

'क्यों, कैसी असुविधा ?' - बाबा के हाथ में चाय का कप धीरे-धीरे कांप रहा था. उनकी आंखें मेरे चेहरे पर अटकी थीं - 'बेटी के समान बहू है. वह मेरा जितना ख्याल रखती है, उतना तो तुम भी नहीं रखते,' - और बाबा मुस्करा पड़े.

मैं आश्वस्त हुआ - 'मैं भी यही चाहता हूं. मेरे नहीं रहने पर किसी चीज़ की ज़रूरत पड़े तो निःसंकोच सुष्मिता से कहेंगे. अब से यह घर आपका है, आप हमारे बुजुर्ग हैं.'

बाबा कुछ बोले नहीं. उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे आश्वस्त किया.

पत्नी फिर चाय के दो प्याले और तश्तरी में बिस्कुट कमरे में रख गयी. मैंने बाबा की तरफ बिस्कुट वाली तश्तरी बढ़ा दी. वे पलंग पर पलथी मारकर बैठ गये और तश्तरी से बिस्कुट निकालकर चाय में डुबा-डुबाकर खाने लगे.

'बाबा, आपसे मुंबई वाली घटना सुनना चाहूंगा, जो नर्सिंग होम में आप सुना रहे थे.... हां, तो आगे क्या हुआ बाबा ? मुंबई से आप चले क्यों आये ? वहां तो आपके दिन अच्छे-भले बीत रहे थे ?' मैंने उस दिन के कथा-सूत्र को बाबा को पकड़ाते हुए पूछा.

'हां, बेटे, दिन तो अच्छे ही कट रहे थे. तुमने अख़बारों में पढ़ा ही होगा कि किसी पत्रिका में एक लेख छप गया कि चित्रकार हुसैन ने हिंदू देवी-देवताओं के अश्लील चित्र बनाकर हिंदुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचायी है. फिर क्या था, हुसैन के खिलाफ आंदोलन-प्रदर्शन होने लगे. 'दल' और 'सेना' वालों ने एक दिन हुसैन के घर पर हमला कर दिया. भाग्य से हुसैन उस वक्त घर पर नहीं थे. वे बच गये, मगर प्रदर्शनकारियों ने फ्लैट में तोड़फोड़ कर अपना गुस्सा जताया. उन्हें मालूम नहीं था कि मैं भी हुसैन के पड़ोस में ही रहता हूं. नहीं तो उनका निशाना मैं भी बन सकता था. उनकी नज़र में हर मुस्लिम लेखक-कलाकार हिंदू-विरोधी था. तभी पता नहीं, किसने मुझे फोन किया कि रहीम जी, फौरन अंडर ग्राउंड हो जाइए और जितनी जल्दी हो सके, मुंबई छोड़ दीजिए, नहीं तो हम आपको बचा नहीं पायेंगे. पता नहीं वह फोन किस फ़रिश्ते का था. मैंने फ्लैट के दरवाजे से अपना नेमप्लेट हटाया, अपनी दाढ़ी काटी और हिंदू-वेश में मुंबई छोड़ दी.'

बाबा कहते-कहते थम गये. शायद वे उस क्षण की भयावहता को याद कर रहे थे, जिसमें उन्हें मुंबई छोड़नी पड़ी थी.

'तो फिर आप वहां से हमारे राज्य में आ गये ?'

'नहीं बेटे, मैं वहां से लुकते-छिपते गुजरात पहुंचा.'

'आपने बहुत अच्छा किया बाबा. गुजरात अपेक्षाकृत शांत राज्य है. वह अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी की जन्मभूमि भी है.'

'शांत राज्य ?'

और बाबा के चेहरे पर व्यंग्य का भाव उभर आया था. वे मुझे प्रश्नवाचक नज़रों से घूर रहे थे, मानो मेरी अज्ञानता पर तरस खा रहे हों.

उनका इस तरह मुझे घूरना मुझे आशंकित कर गया.

'मैं सोचता था कि वहां मुझे कोई पहचानेगा नहीं. मैं शांति से वहां रह सकूंगा. तुम्हारी तरह मैं भी मानता था कि गुजरात अपेक्षाकृत एक शांत राज्य है. वह पूज्य बापू की जन्मभूमि है, मगर यहीं मैंने गलती कर दी...'

'वह कैसे, बाबा ?' मैंने उन्हें बीच में ही टोका.

बाबा ने चाय की आखिरी चुस्की ली और प्याले को मुझे थमाते हुए बात शुरू की - 'जैसा कि मैंने तुमसे कहा, मैंने सोचा था कि वहां कोई मुझे पहचानेगा नहीं. मगर पहचानने वाले पहचान ही गये. पता नहीं कैसे, यह बात जंगल की आग की तरह फैल गयी कि रहीम आये हैं. फिर क्या था, लोग झुंड-के-झुंड आने लगे. उनमें से कुछ लोग, जिन्होंने अपनी पाठ्यपुस्तकों में मेरे दोहे पढ़े थे, मुझसे मिलना चाहते थे. वे मुझसे तरह-तरह के सवाल पूछते. उनसे मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती. मिलने वालों में कुछ ऐसे भी होते जिनका मकसद साफ़ नहीं होता. वे आते, मुझको संदेह भरी नज़रों से घूरते, फिर वे थोड़ा अलग हटकर गुजराती भाषा में बतियाने लगते. चूंकि मैं गुजराती भाषा जानता नहीं, इसलिए उनका आशय मेरी समझ में नहीं आता. वे अपनी बातों के दौरान 'हिंदू-मुसलमान' शब्दों का बार-बार इस्तेमाल करते. उनके हाव-भाव से मुझे किसी साजिश की बू आती. इस स्थिति से मैं भीतर तक दहल जाता. कभी कभी सोचता क्या मुंबई यहां भी दोहरायी जायेगी.'

'एक दिन कुछ लोग मेरे पास आये. वे अपने को एक हिंदू-संगठन का बतला रहे थे. वे अपने साथ अपने दल से संबंधित कुछ पर्चे भी लाये थे, जिसमें कुछ घोषणाएं छपी थीं - 'गर्व से कहो हम हिंदू हैं', 'हिंदुस्तान हिंदुओं का है'. उसके बाद उन्होंने मेरे कमरे के भीतर और बाहर की दिवारों पर उन्हीं भड़काऊ नारों वाले पोस्टर चिपका दिये. कुछ कागज़ मेरे सामने भी लापरवाही से बिखेर दिये.'

'उनका इस तरह बगैर पूछे कमरे में आना और दिवारों पर पोस्टर चिपकाना अशिष्टता ही नहीं गैर-कानूनी था, फिर भी मैंने अपना धैर्य बनाये रखा, क्योंकि मैं जानता था कि भीड़ के आगे कानून और शिष्टाचार की दुहाई देना बेकार होता है. मैं अच्छी तरह समझ गया था कि इसी 'दल' ने मुंबई में हुसैन के घर पर हमला किया होगा, फिर भी मैंने अनजान बने रहने का अभिनय करते हुए उनसे पूछा कि 'आप लोग क्या चाहते हैं ?' इस पर उनके नेता का जवाब था कि मुसलमानों ने इस पवित्र भारत भूमि को सैकड़ों वर्षों से रौंदा-कुचला है. हिंदू धर्म व संस्कृति को बढ़ने नहीं दिया. उन्होंने इसको अपवित्र किया और उनकी यह कोशिश आज भी जारी है. मुंबई में एक कोई पेंटर है, क्या तो नाम है उसका...'

'हुसैन' - पीछे से आवाज आयी.

हां-हां, हुसैन. इस हुसैन ने हिंदू देवी-देवताओं के अश्लील चित्र बनायें हैं. अब हम ये सब नहीं होने देंगे.

- हिंदुस्तान - हिंदुओं का !
- हिंदू धर्म - जिंदाबाद !
- गर्व से कहो - हम हिंदू हैं !

...आदि नारों से कमरा गूंजने लगा. लगा, जैसे कमरे की छत फट जायेगी. मैं समझ रहा था कि इनसे तर्क-वितर्क करना आग में घी डालने जैसा होगा. इसलिए मैंने उनसे हाथ जोड़कर शांत रहने की अपील की - 'दोस्तों, आप शांत हों और इस बूढ़े की भी बात सुनने की कोशिश करें.'

'मेरी अपील का कुछ असर हुआ और नारे बंद हो गये. मैंने उनसे कहा कि आपकी भावनाओं का मैं आदर करता हूं. किसी को भी दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुंचाने की इजाजत नहीं मिलनी चाहिए. हुसैन को ऐसा नहीं करना चाहिए था. मगर आप सब मुझसे चाहते क्या हैं,' - मैंने उनसे पूछा. यह पूछते हुए मैं भीतर-ही-भीतर डर भी रहा था कि कहीं मेरे इस सवाल से वे उत्तेजित न हो जायें. वे उत्तेजित तो नहीं हुए, मगर मैंने दुनियां देखी है. इस तरह की स्थिति से कैसे निपटा जाता है, मैं जानता हूं. मैं बिना उत्तेजना में आये उनके लीडर की बातें सुनता रहा. उसने कहा - 'देखिए बाबा, हम एक संपूर्ण हिंदू राष्ट्र चाहते हैं, जहां दूसरी जातियां या तो रहेंगी नहीं, या अगर रहेंगी भी तो उन्हें हमारा वर्चस्व स्वीकार होगा, इसलिए आप के लिए हम एक प्रस्ताव लाये हैं.'

'क्या है वह प्रस्ताव ?' मैंने पूछा.

'उसने कहा - आप हिंदू धर्म स्वीकार कर लीजिए. हमारे 'दल' ने आपको एक मंदिर का महंथ बनाने का निश्चय किया है. आप हिंदी और संस्कृत के विद्वान हैं. आपके लिए यह पद अच्छा रहेगा. हम आपको चौबीस घंटे का समय देते हैं सोचने के लिए. कल हम इसी समय आयेंगे. हमें अपने निर्णय से अवगत कराइयेगा. और नारे लगाते हुए वे मेरे कमरे से निकल गये.'

'मैं समझ गया था कि जो प्रस्ताव वे मेरे लिए लाये थे, वह प्रस्ताव नहीं, आदेश था, अल्टीमेटम था. वहां कोई विकल्प नहीं था....'

कहते हुए बाबा रुक गये थे. उनकी दृष्टि खिड़की के बाहर लॉन में खड़े अमरूद के पेड़ पर टिक गयी थी, जहां बुलबुल का एक जोड़ा डालियों पर फुदक रहा था.

मुझे लगा कि बाबा की आंखें भले ही अमरूद की डालियों पर फुदक रहे बुलबुल के जोड़े पर टिकी थीं, वे अपने भीतर उतरकर उस ग्लानि और वेदना को झेल रहे थे, जो उनके मन में 'दल' वालों की हरकतों से उपजी थीं.

मैंने पत्नी को आवाज दी - 'सुष्मिता जरा सुन जाना.'

वह ताजा अख़बार हाथ में लिये कमरे में दाखिल हुई. हमारी बातचीत में किसी प्रकार का ख़लल नहीं पड़े, इसलिए वह पास के कमरे में अख़बार पढ़ रही थी.

'क्या बात है ?' - उसने पूछा और अख़बार बाबा को थमा दिया, जो पलंग पर अधलेटे मुझको अपने अनुभव सुना रहे थे.

'सुनो, ये कप-प्लेट ले जाओ और दो कप चाय दे जाओ.'

बाबा हमारी बात से वर्तमान में लौट आये - 'क्यों बहू को बार-बार तकलीफ़ देते हो ? अभी-अभी तो हमने चाय पी है.'

'इसमें तकलीफ़ की क्या बात है. मैं अभी चाय लायी'- सुष्मिता ने कप-प्लेट उठाते हुए कहा.

'नहीं, अब और चाय नहीं' - बाबा के शब्दों में दृढ़ता थी. 'रहने दो, अब हम एक साथ खाना ही खायेंगे.'

पत्नी चली गयी.

'हां, तो फिर क्या हुआ, बाबा ?' मैं पूरी कहानी आज ही सुन लेना चाहता था.

'होना क्या था ? मेरे पास कोई विकल्प तो था नहीं. इसके पहले कि वे लोग आते, मुझे तरह-तरह से अपमानित करते, मैंने गुजरात छोड़ दिया.'

'फिर ?'

'फिर मैं वहां से कश्मीर गया,' - बाबा ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी.

'कश्मीर ?' मैंने अचरज से पूछा. मैं बाबा के सामने एक बालक-सा बैठा था. उनकी बातें मुझे परी कथाओं-सी रहस्यमय व विस्मयकारी लग रही थीं.

'हां, कश्मीर ! भारत माता का शीश-मुकुट ! दुनियां का स्वर्ग !'

मैंने बाबा के चेहरे को ध्यान से देखा. वहां वेदना थी, व्यंग्य था. मैंने अंदाज लगाया था कि बाबा का कश्मीर-अनुभव भी सुखद नहीं था.

मेरी आंखें बाबा के चेहरे पर टिकी थीं. उनकी सफेद दाढ़ी धीरे-धीरे हिल रही थी और मन के भीतर एक आलोड़न चल रहा था. वे खामोश-से थे, पर भीतर का आलोड़न चेहरे पर साफ़ देखा जा सकता था.

वे मेरा आशय भांपकर फिर धीरे-धीरे बोलने लगे - 'वहां भी मेरे साथ वही या उसी से मिलता-जुलता घटित हुआ. फर्क सिर्फ़ इतना था कि मुंबई और गुजरात में अपने को हिंदू कहने वालों ने किया और कश्मीर में मुसलमानों ने' - कहकर बाबा रुक गये.

'मैं कुछ समझा नहीं, बाबा,' - मैंने विस्मय से भरकर कहा.

'देखो, जब मैं कश्मीर गया तो मुझे उम्मीद थी कि वहां के मुसलमान मुझे स्वीकार करेंगे, मगर यह मेरी भूल थी. वहां के मुसलमान मुझे शक की निगाह से देखते थे. वे मुझे 'हिंदुस्थान-परस्त' कहते. हिंदुस्तान-परस्ती उनकी भाषा में सबसे बड़ी गाली है. कोई-कोई मुझको 'हिंदुस्तानी कुत्ता' भी कहता. कहीं-कहीं मुझे 'बुत परस्त' यानि 'मूर्तिपूजक' या 'हिंदुओं का दलाल' कहकर मेरा अपमान किया जाता. अगर दो आदमी कहीं बतिया रहे होते और मैं वहां से गुज़रता होता तो वे मुझे देखकर चुप हो जाते. किसी दुकान में सामान खरीदने जाता, तो दुकानदार मुझे ऐसे घूरता, मानो मैं कोई अवांछित व्यक्ति हाऊं. किसी होटल में घुसता तो पहले से बैठे लोग या तो उठकर चल देते या मुझे घूरते हुए फुसफुसाने लगते. मेरे बारे में तरह-तरह की भ्रामक बातें फैलायी जा रही थीं. मसलन, मैं हिंदुस्तानी सरकार का खुफिया हूं और हिंदुस्तान की सरकार ने मुझे यहां भेजा है उग्रवादी गतिविधियों की टोह लेने के लिए. मेरे संस्कृत और हिंदी के ज्ञान को भी वहां के मुसलमान पचा नहीं पाते थे. फिर मेरा हिंदी में काव्य-लेखन, यह तो और भी ख़तरनाक बात थी उनकी नज़र में. कोई सच्चा मुसलमान हिंदी और संस्कृत भला क्यों पढ़ेगा ? वहां के अख़बारों में भी मेरे बारे में इसी तरह की उलजुलूल बातें रोज़ छपती रहतीं. रोज़ कोई-न-कोई अख़बार मेरे खिलाफ़ एक शिगूफा लेकर हाज़िर रहता.

'मैं वहां काफी असुरक्षित महसूस करने लगा था. मेरे साथ किसी भी क्षण कुछ भी अप्रिय घट सकता था. इसी बीच एक

लघुकथा

मुक्ति

✍ डॉ. रामनिवास 'मानव'

बंधुआ मजदूरों की मुक्ति के लिए सर्वोदयी नेता पुलिस की चौकसी में ट्रक लेकर ईंट-भट्ठे पर पहुंच गये. उनके आव्हान पर सभी मजदूर तत्काल अपना सामान बांधकर चलने को तैयार हो गये.

ट्रक के पास आकर मजदूरों के मुखिया के पैर ठिठक गये. उसने और उसके साथ सभी दूसरे मजदूरों ने अपना-अपना सामान ज़मीन पर रख दिया.

'चलिए-चलिए, अपना-अपना सामान जल्दी ट्रक में रखिए,' सर्वोदयी नेता ने कहा.

सभी मजदूर मुखिया की ओर देखने लगे. वह चुप रहा.

'बुधराम, क्या बात है भई ! खामोश क्यों हो ? अपने साथियों को सामान रखने के लिए कहो न !'

मुखिया अब भी चुप था, जैसे कुछ सोच रहा हो. सर्वोदयी नेता ने समझा, ये पुलिस वालों से डर रहे हैं. अतः उनकी ओर संकेत करते हुए बोले - 'ये सिपाही तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे. ये तो हमारे साथ हैं, तुम्हारी मुक्ति के लिए आये हैं.'

'सा'ब ! म्हं की किस्मत मैं तो यो ही लिख्यो है.' मुखिया बोला -'काल इपैं नाय तो दूजा ओर भट्टा पै सही, एई मजूरी करनी पड़ैली.'

'क्यों...क्यों ?'

'एं भट्टा ली कैद सैं तो थे मुकत करा द्यो ला, पण भूख सैं मुकत कोण करावोलो सा'ब !"

७०३, सेक्टर-१३ हिसार (हरि.) १२५ ००५.

दिन मैं बाजार से सामान खरीदकर वापस घर लौट रहा था. देखा, पचास-पचपन साल के एक सज्जन पीछे से जल्दी-जल्दी आकर मेरे बराबर में चलने लगे. वे पहनावे से हिंदू लग रहे थे. आप अब्दुल रहीम खानखाना 'रहीम' हैं ? - उन्होंने मेरे चेहरे को देखते हुए पूछा. मेरे हां कहने पर वे बीच रास्ते में ही मेरे पांवों पर झुक पड़े - 'अहो भाग्य हैं मेरे, जो आपके दर्शन हुए' - उन्होंने कहा. मैंने झुककर उन्हें अपने पांवों पर से उठाया - 'उठिए, महाशय, आप कौन हैं ? मैंने आपको पहचाना नहीं' - मैंने उनका परिचय जानना चाहा.'

'आप मुझे जानेंगे कैसे ! मैं आपके करोड़ों पाठकों, प्रशंसकों और भक्तों में से एक हूं,' - वह सज्जन भक्ति-भाव से दोनों हाथ जोड़े मुझे निहारते हुए कह रहे थे.

'सच कहूं, जहां आदमी को कदम-कदम पर उपेक्षा और अपमान मिल रहा हो, वहां किसी का इस प्रकार भक्ति-प्रदर्शन किसी को भी विस्मयपूर्ण प्रसन्नता से भर देगा. वे कहे जा रहे थे - 'मैंने अख़बारों में पढ़ा था कि आजकल आप कश्मीर में हैं. आपके बारे में तरह-तरह की आधारहीन और अपमानजनक बातें पढ़कर मुझे कष्ट होता था.... लेकिन आप ठहरे कहां हैं ?' उन्होंने बीच में ही प्रसंग बदलकर पूछ लिया. स्थान का नाम बताने पर वे चिहुक उठे - 'नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आप वहां नहीं रह सकते, मैं आपको वहां नहीं रहने दूंगा. आप मेरे साथ रहेंगे.'

'मगर मेरा वहां कुछ सामान है....'

'मारिए गोली सामान को. जान है तो जहान है. आप हमारे घर चलेंगे.'

'उनकी इस तरह दृढ़तापूर्वक कही गयी बातें किसी आशंका की पूर्व-सूचना थीं.'

'और मैं विरोध नहीं कर सका. किसी आज्ञाकारी बच्चे के समान उनके साथ हो लिया.'

'घर पहुंचकर वे आश्वस्त दिखे. उन्होंने मुझको अपने ड्राइंगरूम में बैठाकर पत्नी को आवाज दी - 'अरे शुभांगी, कहां हो ? देखो, कौन आया है.' - उनके शब्दों में उछाह मानो उमड़ा पड़ रहा था.

'बगल के कमरे से पत्नी माथे पर साड़ी का पल्लू संभालती हुई निकली.'

'अरे देखो तो यहां कौन बैठा है ?'

'मैंने पहचाना नहीं' - पत्नी मुझे सलज्ज निहारती हुई बोली.

'अरे रहीम जी हैं, अब्दुल रहीम खानखाना 'रहीम' !'

'अरे' - कहती हुई मेरे पांवों पर झुककर हाथ से मेरे चरण स्पर्श कर अपने माथे से लगाती रही तब तक, जब तक मैंने उसे मना नहीं किया. उसके चेहरे पर आश्चर्य और खुशी के मिलेजुले भाव थे. वह एक सुसंस्कृत और शिक्षित महिला थी. उसने अपनी दोनों किशोर बेटियों को बुलाया - 'आओ, रहीम बाबा आये हैं, पांव छुओ.'

दोनों बेटियां शायद कॉलेज में पढ़ती थीं. वे मेरे साहित्य के बारे में पूछना चाहती थीं, मगर शुभांगी ने मना कर दिया - 'पहले बाबा आराम करेंगे. जाओ, इनके लिए चाय बनाकर लाओ.'

'पति-पत्नी मेरे बगल में बैठकर बातें करने लगे. पति कह रहे थे आज सबेरे ही बाबा के बारे में बातें हो रही थीं और आज ही शाम को मिल भी गये. आज सुबह के अख़बार में बाबा के बारे में काफी कुछ अंटशंट छपा था, इसलिए इनकी सुरक्षा के बारे में मैं बहुत चिंतित था.'

'आपने बाबा को पहचाना कैसे ?' पत्नी खुशी और आश्वस्ति में भरकर पूछ रही थी.

'इसे मैं एक संयोग ही कहूंगा,' - वे सज्जन पत्नी को बतला रहे थे - 'मैं बाज़ार से गुज़र रहा था कि दो-तीन आदमी आपस में धीरे-धीरे बतिया रहे थे. मैं ठिठक गया. उनमें से एक कह रहा था कि देखो वो जा रहा है 'रहीम', हिंदुस्तानी गद्दार ! उससे बच के रहना.'

'दूसरे ने पूछा कि कहां है रहीम ? जरा मैं भी तो देखूं.'

'उसने कुछ दूरी पर जाते एक आदमी की तरफ हाथ से इशारा किया. बस, उसी तरफ मैं झटक पड़ा. और इस तरह बाबा मुझे मिल गये.'

'खोयी हुई वस्तु के मिल जाने पर आदमी जैसा खुश होता है, वैसी ही खुशी उन सज्जन के चेहरे पर उस समय थिरक रही थी.'

'लेकिन आपने अपने बारे में तो कुछ बतलाया नहीं. इस तरह मेरे-जैसे एक अनजान को रास्ते से लाकर...'

उन्होंने मुझे बीच में ही रोककर मेरे दूसरे सवाल का पहले जवाब दिया - 'आपको कौन नहीं जानता, बाबा ! रहीम जिसके लिए अपरिचित-अनजान है, उसके लिए हिंदुस्तान अपरिचित है. आपने भारत की आत्मा को संवारा है. यह अब तक आपकी कविताओं से ही तो सिंचित-पोषित होता आया है. ऐसा कवि-मनीषी भला किसी के लिए अपरिचित हो सकता है !'

उन्होंने अपनी पत्नी की ओर समर्थन में देखा.

पत्नी आत्ममुग्ध मुझे और अपने पति को निहारे जा रही थी.

दंपति की बड़ी बेटी चाय लेकर आ गयी.

मैंने उसके हाथ से चाय लेते हुए उससे उसकी पढ़ाई-लिख़ाई और रुचियों के बारे में पूछा. ...हां, तो आप अपने बारे में कुछ बतलायें - मैंने चाय पीते हुए पूछा. उन्होंने मुझे बतलाया कि मेरा नाम रघुवीर पंडित है. मैं यहीं के एक कॉलेज में हिंदी का रीडर हूं. मेरी पत्नी शुभांगी भी उसी कॉलेज में संस्कृत पढ़ाती है. अब तो कहना चाहिए कि 'हम पढ़ाते थे', क्योंकि कॉलेज वर्षों से बंद

पड़ा है और वह अब मिलिटरी छावनी में तब्दील हो चुका है. हम अपनी दोनों बेटियों की पढ़ाई को लेकर रात-दिन चिंतित रहते हैं. क्या करें, माहौल ही कुछ ऐसा है कि न इस ज़गह को छोड़ते बनता है, न रहते. सोते-जागते हर समय अपना अनिश्चित भविष्य हमें डराता रहता है' - वे एक सांस में कह गये थे.

'यह सचमुच बड़ी विकट स्थिति है, रघुवीर जी. ...लेकिन आप मुझे यहां लाये क्यों ?'

वह इसलिए, बाबा, कि आप जहां ठहरे थे, वह ज़गह कट्टरपंथी मुसलमानों का अड्डा है. किसी पर ज़रा-सा भी शक होने पर वे उस पर हमला बोल देते हैं. इसके अलावा वहां भारतीय सेना के छापे भी रोज़ पड़ते रहते हैं. उनकी तरफ से भी आपको ख़तरा था. हम आपको जान बूझ कर सांप के बिल में भला कैसे छोड़ सकते थे ?

मैंने ख्याल किया, ज़गह का नाम सुनकर उनकी प्रोफेसर पत्नी भय से सिहर उठी थी. उसने ड्राइंगरूम में लगे किसी हिंदू-देवता वाले कैलेंडर की तरफ हाथ जोड़कर कृतज्ञता प्रकट की.

'दूसरे दिन सुबह-सुबह पति-पत्नी एक कमरे में कुछ-कुछ धीमे स्वर में बातें कर रहे थे. उनके सामने उस दिन का ताजा अख़बार खुला रखा था. मुझे देखकर वे चुप हो गये और पत्नी अख़बार को समेटने लगी. आज के अख़बार में क्या है ? मेरे पूछने पर प्रोफेसर-दंपति एक-दूसरे का मुंह देखने लगे - 'नहीं, कुछ नहीं बाबा, यह तो रोज़ का नियम-सा हो गया है' - शुभांगी मुझसे कुछ छुपाना चाह रही थी. पति रघुवीर पंडित कुछ चिंतित लग रहे थे.

'मैंने अख़बार हाथ में ले लिया. पहले पृष्ठ पर एक उग्रवादी संगठन के मुखिया का बयान छपा था - हिंदुस्थानी कुत्ता रहीम, जो हिंदुस्थानी सरकार की ओर से जासूसी करने आया था, भाग गया. हमारे आदमी उसकी तलाश में हैं. उसको ज़िंदा या मुर्दा पकड़ने वाले को हम पांच लाख रुपये का इनाम देंगे. कल रात हमारे आदमी उसके अड्डे पर गये थे, मगर उसके पहले ही वह हिंदुस्तानी कुत्ता भाग गया था.'

'मैंने अख़बार पढ़कर शुभांगी को लौटा दिया. प्रोफेसर दंपति मेरे चेहरे पर उस समाचार की प्रतिक्रिया पढ़ रहे थे. वहां चिंता की रेखाएं थीं.'

प्रोफेसर रघुवीर ने पूछा - 'बाबा आप क्या सोच रहे हैं ?'

'जितनी जल्दी हो सके मुझे यह ज़गह छोड़ देनी चाहिए. मेरी वज़ह से कहीं आप लोग भी मुसीबत में न पड़ जायें.'

'नहीं आप हमारी चिंता छोड़िए. आप यहां पूरी तरह सुरक्षित हैं. इस अवस्था में हम आपको नहीं छोड़ सकते,' - शुभांगी बोली.

रघुवीर पंडित ने पत्नी की बात का समर्थन किया - 'बाबा शुभांगी ठीक कह रही है. इस हालत में आपका जाना ठीक नहीं होगा. मैं तो कल वाली बात के लिए ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद

देता हूं. क्या अद्भुत संयोग था वह ! बाजार में आपसे मुलाकात, फिर जिद करके आपको घर लाना और वह रात वाली घटना ! जैसे कोई चमत्कार घट गया हो. वे बार-बार ईश्वर के प्रति आभार व्यक्त कर रहे थे.

इस तरह उस प्रोफेसर-दंपति के घर में छिपकर तीन दिन तक रहा. चौथे दिन प्रोफेसर रघुवीर ने एक हिंदू ट्रक ड्राइवर से कहकर मुझे ट्रक से दिल्ली भिजवा दिया. जाते वक़्त उन्होंने मुझे नये कपड़े और रुपये दिये. मेरे इंकार करने पर शुभांगी रोने लगी - 'बाबा आप तो हमारे पिता हैं. अगर हमारे अपने पिता आये होते तो क्या हम उन्हें यों ही जाने देते ? यों भी सारा भारत आपका ऋणी है.'

'शुभांगी का गला भर आया था. प्रोफेसर रघुवीर भी रूमाल से अपनी आंखें पोंछ रहे थे. दंपति की दोनों बेटियां कह रही थीं - 'बाबा, हमें भूल तो नहीं जायेंगे न ? हम तो धन्य हो गये. आपके दोहे पढ़े थे, आज आप हमारे सामने साक्षात खड़े हैं'.

शुभांगी ने बच्चियों को गुंडेरा, जिसका अर्थ था कि चुप रहो, कोई सुन लेगा.

'सॉरी मम्मी, सॉरी मम्मी' - दोनों बेटियां करने लगीं. उन्हें अपनी गलती का अहसास हो गया था.

सचमुच विदाई का वह क्षण बड़ा ही मार्मिक हो उठा था.

यह कहते-कहते बाबा रुक गये थे. उस मार्मिक क्षण को यादकर उनका गला भर आया था.

'मैं सच कहता हूं, बेटे, प्रोफेसर दंपति का आतिथ्य भुलाये नहीं भूलता. प्रोफेसर का ऐन मौके पर मुझे मौत के मुंह से जाने से बचा लेना, क्या कभी भूला जा सकता है, उस घटना को याद करके मैं अभी कांप उठता हूं.'

'सचमुच प्रोफेसर-दंपति ने आपको मौत के मुंह से निकाल कर आपके करोड़ों पाठकों-प्रशंसकों के ऊपर एहसान किया. ...तो फिर आप वहां से ट्रक से दिल्ली आ गये ?' मैंने बात का सूत्र जोड़ने की कोशिश की.

'हां, बेटे, मैं ट्रक से दिल्ली चला आया. दिल्ली में प्रोफेसर दंपति के ही एक मित्र-परिवार के साथ मैं दो दिनों तक रहा. मित्र-परिवार ने ही बतलाया कि दिल्ली अब सुरक्षित शहर नहीं रहा. यह आई.एस.आई., कश्मीर और सिख उग्रवादियों के हिट लिस्ट में है. समय-समय पर होने वाले विस्फोटों से यह बात साफ़ हो चुकी है. मित्र-परिवार ने सलाह दी कि मुझे जल्द-से-जल्द दिल्ली छोड़ देनी चाहिए, खास तौर से उस हालत में जब मेरे ऊपर ईनाम घोषित हैं. दिल्ली उग्रवादियों के लिए दूर नहीं है.'

'फिर ?'

'फिर क्या ? दिल्ली मुझे सुरक्षा नहीं दे सकती थी. वह लाचार थी. मैं उसकी लाचारी को और बढ़ाना नहीं चाहता था. इसलिए एक दिन मैंने दिल्ली छोड़ दी और घूमते-घूमते पहुंच गया देश के पूर्वी छोर पर. नागालैंड गया, मणिपुर गया, अरूणाचल गया. घूमता रहा, घूमता रहा. मैं बड़ा खुश था. मांग-मूंगकर मधुकरी खा लेता और दिनभर बेफिक्र होकर घूमता. लोगों से मिलता. उनके अनुभव सुनता. मैं पुरानी आप बीती को भूलकर अपने को नये जीवनानुभवों से जोड़कर एक नयी ज़िंदगी की शुरूआत करना चाहता था. मुझे इस बात का गुमान हो चला था कि मुझे वहां कोई पहचानता नहीं. तभी एक रात जब मैं सो रहा था, तीन-चार आदमी आये. - 'क्या रहीम आपका ही नाम है ?'- उन्होंने मेरी झोपड़ी के दरवाजे से ही पूछा. वे सभी अंग्रेजी ड्रेस में थे, सूट-टाई से लैस, पावों में जूते.'

'हां, मुझे ही रहीम कहते हैं,' - मैंने अपनी चटाई पर बैठते हुए कहा.

'क्या हम भीतर आ सकते हैं ?' - उनमें से एक ने पूछा. शायद वह उनका अगुआ था.

'हां, हां, खुशी से.' मैं असमंजस में था, उन लोगों को कहां बैठाऊं कुछ सूझ नहीं रहा था. अपनी फटी चटाई पर उन्हें बैठने में मुझे संकोच हो रहा था - 'देखिए, आप लोग बुरा न मानो, मैं आप सभी को बैठा भी नहीं सकता. मेरे पास तो बस यह एक टूटी-फटी चटाई है.'

'इट्स ऑल राइट, मि. रहीम. रिलैक्स, रिलैक्स.' और उनमें से एक आदमी मेरे पास आकर बैठ गया. बाकी लोग खड़े रहे. जो आदमी मेरे पास बैठा था, उसने बड़े ही विनम्र शब्दों में कहना शुरू किया - 'लुक मि. रहीम, आपके बारे में हम सब कुछ जानते हैं. आप बादशाह अकरबर के नवरत्नों में गिने जाते थे. आप अकबर के सेनापति भी थे और हिंदी में आपकी कविताएं विश्वविद्यालयों तक में पढ़ायी जाती हैं. आज आप मधुकरी खाते हुए दर-दर भटक रहे हैं. नाऊ यू आर ए बेगर, आप एक भिखारी हैं. हमारे पास आपके लिए एक बहुत ही सुंदर प्रॅपोजल है. आप उसे स्वीकार कर ऐश की ज़िंदगी गुज़ार सकते हैं...'

'आखिर, आप लोगों का प्रस्ताव क्या है ?' - मैंने बीच में ही जिज्ञासा प्रकट की. दरअसल मैं चाहता था कि वे जल्द-से-जल्द अपनी बातें ख़त्म कर चले जायें. मैं सारे दिन का थका-मादा घर लौटा था और चाहता था कि कोई मुझे विरक्त न करे.

'हमारा प्रॅपोजल बिल्कुल सिंपल है, साधारण है. यू कम विथ अस एंड एम्ब्रेस क्रिश्चियनिटी - आप हमारे साथ आइए और ईसाईयत को अपना लीजिए. कल से आप ऐश करेंगे. यू विल लीड ए लक्ज़रियस लाइफ. आप मधुकरी-वधुकरी भूल जायेंगे.'

'मैं उनके इस तरह रात में प्रस्ताव लेकर आने से डर गया था, मगर मैंने अपने को उनके सामने कमजोर नहीं पड़ने दिया. उनके मुंह पर ही उनके प्रस्ताव को ठुकराना, किसी नयी मुसीबत को न्योता देना था. मुंबई, गुजरात, कश्मीर और दिल्ली का अनुभव मेरे पास था. इसलिए मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक कहा कि आपका प्रस्ताव बड़ा सुंदर है. मुझे सोचने के लिए एक हफ्ते का समय चाहिए.'

'ओ. के., वेरी गुड. हम एक हफ्ता बाद फिर इसी ज़गह इसी समय मिलेंगे. बाय !' गुडनाइट कहते हुए वे चले गये.

'उनके जाने के बाद मुझे अपने आप पर हंसी आ गयी - बेटा रहीम, तुम जहां भी जाओगे, आंधी-तूफान तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगे. तुम सोच रहे थे कि तुम्हें यहां कोई नहीं पहचानेगा, तुम यहां मुक्त विचरण कर सकोगे. अब निपटो बेटे, इस नयी मुसीबत से.'

'मेरे सामने एक हफ्ते का समय था और इसी बीच मुझे मुझे कुछ ठोस निर्णय करने थे. मेरे दिमाग में एक ही बात बार-बार कौंध रही थी - 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः.'

'तीसरे दिन रात को जब मैं दिनभर का थका हारा अपनी झोपड़ी को लौट रहा था, इलेक्ट्रॉनिक्स सामान बेचने वाली एक दुकान के 'शो-विंडो' के सामने भीड़ देखकर उत्सुकतावश मैं भी रूक गया. शो-विंडो में विभिन्न कंपनियों के टी. वी. सेट रखे थे, जिन पर विभिन्न चैनलों के कार्यक्रम आ रहे थे. एक सेट में मैंने देखा कि हाथी पर बैठकर इस राज्य के पूर्व-मुख्यमंत्री मुरारी राऊत जुलूस की शक्ल में गाजे-बाजे के साथ घर जा रहे थे. वे अरबों रुपये के एक घोटाले के केस में संवाददाताओं के प्रश्नों के उत्तर भी देते चल रहे थे. एक सवाल के जवाब में उन्होंने कहा कि -'अब मैं सारे भारत में सेक्युलरवादी दलों के साथ घूम-घूमकर सांप्रदायिक दलों की साजिश के ख़िलाफ जनता को आगाह करूंगा.' मुझे उनकी बात को सुनने के बाद लगा कि सारे हिंदुस्तान में अगर कोई रहने लायक ज़गह है, तो वह यही प्रदेश है, जहां सांप्रदायिकता के लिए कोई स्थान नहीं है. यह ऋषि-मुनियों एवं

मनीषियों की कर्मभूमि एवं तपोभूमि भी रहा है. मैं रातभर खुशी के मारे सोया नहीं. दूसरी सुबह बिना समय गवांये मैंने यहां के लिए कूच कर दिया.'

यहां पहुंचकर सबसे पहले मैं मुरारीजी से मिलकर उनको हाथी पर से पत्रकारों को दिये गये इंटरव्यू के लिए बधाई देना चाहता था. इसलिए राजधानी पहुंचकर मैं सीधे उनके आवास पर गया. वे अपने भाई मुख्यमंत्री जिन्हें उन्होंने जेल जाने के पहले मुख्यमंत्री की गद्दी सौंपी थी, के आवास पर थे. वहां कुछ आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद मुझे उनसे मिलने की इज़ाजत मिल गयी. मुरारी राऊत लुंगी और बंडी पहने कमरे में एक आदमी से बतिया रहे थे. वह व्यक्ति हाथों में कागज़ों का पुलिंदा और एक फाइल लिये था. शायद वह उनका सचिव था.

मैंने कमरे में घुसते ही मुरारी जी को नमस्कार करके अपना परिचय दिया - 'मैं रहीम हूं. मैं बादशाह अकबर का दरबारी कवि था. मैं अकबर का सेनापति भी था...'

मुरारीजी ने मुझे बीच में ही रोक दिया - 'कौन रहीम ? भई, मुझे तो किसी रहीम-वहीम का नाम याद नहीं आ रहा. अरे, इतिहसवा तो थोड़ा मैं भी पड़ा हूं.' - उन्होंने उस व्यक्ति की तरफ जिज्ञासा से देखा, जो उनका सचिव लग रहा था. सचिव कुछ बोलता, इसके पहले ही मैंने कहा कि - 'मेरे दोहे पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाये जाते हैं और...'

'पढ़ाये जाते होंगे. इधर बहुत-से ऐरे गैरे कवियों लेखकों की रचनाएं पाठ्यपुस्तकों में घुसेड़ दी गयी हैं. हम शिक्षामंत्री से इस बाबत जवाब तलब करने वाला हूं. जल्दी ही एक इंक्वायरी कमिटी बैठने वाली है.'

'मुरारी जी, मेरी कविताएं सैकड़ों वर्षों से सारे हिंदुस्तान मे पढ़ायी जाती रही हैं. हमारे समान मुसलमान कवियों को ही संकेत करके भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है - 'इन मुसलमान हरिजनन पे कोटिक हिंदू वारिए' - मैंने हिम्मत नहीं हारी और मुरारी जी को समझाने की कोशिश जारी रखी.

'तो क्या, ये त्रेता या द्वापर वाले राजा हरिश्चंद्र कवि भी थे ?' - मुरारी जी के अचरज की सीमा नहीं थी.

'नहीं, ये भारतेंदु हरिश्चंद्र बनारस के रहने वाले एक कवि थे. इनका संबंध उस राजा हरिश्चंद्र से नहीं है. अच्छा, आपने 'रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन के फेर' या 'रहिमन विपदा तू भली', या 'जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग' आदि दोहे तो पढ़े ही होंगे ? मैं वही रहीम हूं.'

'आरे, तऽ इहे बतिया कहिए न कि आप वही रहीम हैं. इतना भवंडल बांधने की क्या ज़रूरत थी ? हम क्या जानते नहीं हैं कि आप अकबर के सेनापति भी थे ? बैठिए-बैठिए, बहुत देर से खड़े हैं. बोलिए, हम आपकी क्या सेवा कर सकता हूं.' मुरारीजी मेरे प्रति सहसा विनम्र और सदय हो उठे. उनके व्यवहार की थोड़ी

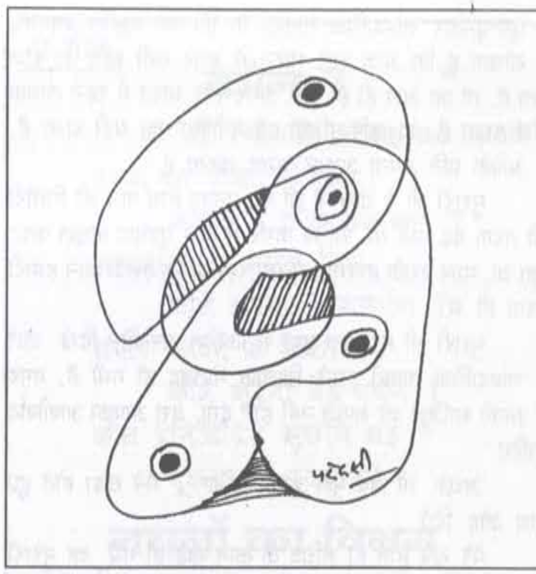

देर पहले वाली रूक्षता गायब थी.

'उन्होंने आवाज देकर एक आदमी को बुलाकर कहा कि दो कप चाय जल्दी लाओ और हां उससे कहना कि आजकल दाल और सब्जी में नमक ज्यादा डाल देती है. तनी दिमगवा सही करके रसोई बनाया करे... हां, तो बाबा, रहीम जी, हम आपके लिए क्या कर सकता हूं ?' - मैं यह समझ नहीं सका कि मुरारी जी किस को दाल-सब्जी में ठीक मात्रा में नमक डालने के लिए हिदायत भिजवा रहे थे. जो हो, उनके आदेश देने का ढंग मुझे बड़ा ही भदेस और सामंती लगा.

'बात ऐसी है, मुरारी जी कि जिस दिन आपका टी.वी. में हाथी की पीठ पर से दिया गया इंटरव्यू देखा था, उसी दिन से मैं आपका प्रशंसक बन गया. मैं उसी दिन से आपसे मिलकर आपको बधाई देना चाहता था.'

'अच्छा-अच्छा उस दिन वाला, जिस दिन हम जमानत पर जेलवा से छूटे थे.' - मुरारी जी ने कुछ याद करते हुए कहा. उनके चेहरे पर खुशी थी.

'हां, तो उसमें आपको कौन-सी बात लगी बधाई देने लायक?' - उन्होंने मुंह में डालने के लिए पान की गिलौरी उठायी. तभी उनकी नज़र दरवाजे की तरफ गयी और पान को वापस रख दिया, जहां से उठाया था. सेवक चाय की ट्रे लिये आ रहा था. मुरारी जी ने मुझसे चाय लेने को कहा और खुद भी एक कप उठा लिया.

'हां, तो उसमें आपको कौन-सी बात अच्छी लगी थी ?' मुरारी जी ने फिर पूछा.

'मुझे आपकी वह बात सबसे ज्यादा जंची थी, जिसमें आपने कहा था कि आप सेक्युलर ताकतों को एकजुट करके सारे भारत

में घूम-घूमकर सांप्रदायिक ताकतों के ख़िलाफ माहौल बनायेंगे. मैं सोचता हूं कि आज सारे भारत में अगर सही सोच का राज नेता है, तो वह आप ही हैं. और अगर सारे भारत में रहने लायक कोई राज्य है, तो ऋषि-मुनियों एवं मनीषियों का यही राज्य है. मैं आपके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं.'

मुरारी जी ने चाय पी ली थी. उनका हाथ पान की गिलौरी की तरफ बढ़ गया था. सचिव कमरे में बैठा चुपचाप फाइल पलट रहा था, मगर उसके हावभाव से लग रहा था कि उसके कान हमारी तरफ ही थे.

मुरारी जी मेरी इस बात से किंचित उत्साहित दिखे. बोले - 'सांप्रदायिक ताकतें हमारे ख़िलाफ गोलबंद हो गयी हैं, मगर मैं उनकी साजिश को सफल नहीं होने दूंगा. बस आपका आशीर्वाद चाहिए.'

'अच्छा, तो अब मुझे आज्ञा दीजिए,' - मैंने खड़ा होते हुए हाथ जोड़ दिये.

मेरे खड़े होते ही सचिव के कान खड़े हो गये. वह मुरारी जी को इशारे से बगल के कमरे में ले गया. दो-तीन मिनटों के बाद दोनों आदमी निकले. मैं खड़े-खड़े उनका बाहर आने का इंतजार कर रहा था.

'आप ठहरे कहां हैं ?' मुरारी जी ने पूछा.

'मेरा कोई ठौर-ठिकाना नहीं है. जहां सांझ वहां विहाना मधुकरी पर ज़िंदा रहने वाले के लिए ठौर-ठिकाना क्या ?'

'मधुकरी ? यह क्या चीज़ है ?' - मुरारी जी ने सचिव की तरफ जिज्ञासा से देखा.

'सर, मधुकरी भोजन की भिक्षा को कहते हैं. भिखारी-भिक्षा में अनाज नहीं लेते. वे भिक्षा के रूप में पके अनाज का भोजन स्वीकार करते हैं और हाथ में ही भोजन कर लेते हैं. इसे ही मधुकरी कहते हैं, सर !' - सचिव ने मुरारी जी को समझाया.

'यह भला कैसे हो सकता है. आपको हम अपने राज्य में मधुकरी खाते हुए कैसे देख सकते हैं. यह हमारा अपमान है. आज से आप हमारे राजकीय अतिथि हुए.' - और उन्होंने सचिव को आदेश दिया कि -'रहीम जी के रहने-ठहरने का इंतजाम सरकारी खर्चे पर किया जाये. जब तक इनके रहने के लिए एक फ्लैट का इंतजाम नहीं हो जाता, तब तक इन्हें किसी बढ़िया होटल में ठहराया जाये.'

मुरारी जी के आदेश पर सचिव ने फोन पर किसी से बात की. शायद किसी होटल में मेरे लिए कमरा बुक कराया गया. मैं मुरारी जी में सहसा आये बदलाव पर दंग था.

❒

होटल में हर प्रकार की सुविधा थी. होटल क्या था, स्वर्ग था. होटल के कर्मचारी मुझसे मन-ही-मन भय खाते थे. क्योंकि उन्हें मालूम था कि मैं राजकीय अतिथि हूं. कर्मचारियों की कौन कहे, खुद मैनेजर आकर दिन में दो-तीन बार मेरा हालचाल पूछ जाता था.

तीसरे दिन सवेरे ही जब मैं चाय पी रहा था, एक आदमी आया. उसने कहा कि मुरारी जी ने आपको बुलाया है. तैयार हो लीजिए, नीचे गाड़ी खड़ी है.

मुख्यमंत्री-निवास में सुबह-सुबह अफ़रातफ़री मची थी. पूरा लॉन तरह-तरह की गाड़ियों, पुलिस और नेता-टाइप लोगों से भरा था. गाड़ी से उतारकर मुझे सीधे उस बड़े-से हॉल में ले जाया गया, जहां पहले दिन मैं मुरारी जी से मिला था. वहां मुरारी जी बैठे हुए कुछ ख़ास लोगों के साथ चाय पी रहे थे. मुझसे भी चाय के लिए पूछा गया, मगर मैंने मना कर दिया. उसके बाद मुरारी जी ने वहां बैठे लोगों से मेरा परिचय कराया - 'ये हैं कवि रहीम. आप लोगों ने अपनी स्कूली किताबों में इनके दोहे पढ़े होंगे. ये हमारे राजकीय अतिथि हैं और बाबा, ये लोग मेरे मंत्रिमंडल के सदस्य हैं.'

असलियत यह थी कि मुरारी जी ही असली मुख्यमंत्री थे. धरीछन राउत तो माध्यम थे. सिर्फ़ नाम के मुख्यमंत्री. मुरारी जी का आदेश ही मुख्यमंत्री का आदेश होता.

परिचय की औपचारिकता पूरी करके मुरारी जी ने पूछा - 'होटल में आपको कोई असुविधा तो नहीं है न ?'

मेरे नहीं कहने पर वे आश्वस्त होकर आगे बोले - 'रहीम जी, अभी हम लोग राज्य के उत्तरी हिस्से में चल रहे हैं एक जन-सभा को संबोधित करने. आपको भी चलना है. हम आपका ही इंतजार कर रहे थे.'

मुरारी जी का इशारा पाते ही लॉन से एक-एक कर गाड़ियां निकलने लगीं. अंत में मुरारी जी एक गाड़ी की तरफ बढ़े. उनके साथ एक नेतानुमा बुजुर्ग सज्जन भी बढ़े. मुरारी जी ने उनको दूसरी गाड़ी से आने को कहा और मुझको अपने साथ पीछे की सीट पर बैठा लिया. मेरा अनुमान है कि इससे बहुतों को अचरज हुआ होगा, मुझे भी हुआ. कुछ लोगों को शायद ईर्ष्या भी हुई हो. ... हां, तो मेरे गाड़ी में बैठ जाने के बाद सचिव भी फाइलों के साथ ड्राइवर की बगल में बैठा. गाड़ी चल दी.

मुरारी जी की बगल में बैठा मैं सोच रहा था कि जनसभा में मेरी भूमिका क्या होगी ? मगर मुझे ज्यादा देर इंतजार नहीं करना पड़ा. मुरारी जी ने खुद ही बात की शुरूआत की - 'रहीम जी आपको मालूम होगा कि मैंने अपने राज्य में 'माई' का नारा दिया है. यह अंग्रेजी का शब्द है - एम वाई. 'एम' से मुस्लिम और 'वाई' से यादव. यानि मुस्लिम और यादव. मुस्लिमों और यादवों का मैं सत्ता में वर्चस्व चाहता हूं. अगर ये दोनों जातियां मिल जायें तो दूसरी जातियां हमारा बाल भी बांका नहीं कर सकतीं. हमने राजपूत, ब्राम्हण, भूमिहार, कायस्थ - सभी को सत्ता से बाहर कर दिया है, इस फॉर्मूले के बल पर. 'मुस्लिम-यादव

के इस समीकरण को हमें बनाये रखना है. आपको पूरे राज्य में घूम-घूमकर जनसभाएं करनी हैं, जहां मुसलमानों के मन में डर पैदा करना है: उनके मन में बैठाना है कि मुरारी राउत की पार्टी ही मुसलमानों की हमदर्द पार्टी है. बीजेपी के राज में इस्लाम खतरे में है. कांग्रेस भी मुसलमान विरोधी हैं. हो सके तो कुछ दोहे वगैरह इस विषय पर लिख लीजिए. अपने ऊपर चालीसा लिखने वालों को हमने निहाल कर दिया. मैं वचन देता हूं कि आपको मैं राज्यसभा में भिजवा कर रहूंगा.'

'सर, एक मिनट.' - मुरारी जी के सचिव ने बीच में बोलने की अनुमति चाही. - 'सर, रहीम जी से कहिए कि वे कबीर, खुसरो, रसखान और ग़ालिब को भी बुलवा लें. उनके आ जाने से हमारा 'माई' और मजबूत हो जायेगा.'

'ये लोग कौन हैं ? मैंने इनका नाम तो कभी सुना नहीं ? हां, कबीर और ग़ालिब का नाम कुछ-कुछ सुना सा लगता है.'

'सर, ये लोग भी कवि हैं.'

'हिंदू या मुसलमान ?'

'सर, ये सभी मुसलमान हैं.'

'तो यही कहो न. सिर्फ़ कविये होना काफी नहीं है न हमारे लिए.'

फिर मुरारी जी मेरी तरफ मुखातिब होकर बोले - 'तो आप समझ गये न ? सेक्रेटरी साहब ने जिनको-जिनको कहा है, उन सभी को बुलवा लीजिए. मैं उनको भी एम. पी., एम. एल. ए. या एम. एल. सी. बनवा दूंगा. आज-कल हम जरा मुसीबत में हूं. तरह-तरह के झूठे भ्रष्टाचार के केसों में फंसाया गया हूं. ये बीजेपी वाले मेरे एक नंबर के दुश्मन हैं. मैं इन्हें छोड़ूंगा नहीं.'

'मगर मुरारी जी, मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को भड़काना-उकसाना उनके अंदर असुरक्षा की भावना भरना, आग से खेलने जैसा होगा. कहीं वे हताशा-निराशा में कुछ ऐसा-वैसा कर बैठें तो ?'

'यही तो हम चाहते हैं कि मुसलमान कुछ ऐसा वैसा करें.' - कहकर मुरारी जी ने सेक्रेटरी को खैनी बनाने को कहा.

हमारा कारवां देहाती इलाके से गुज़र रहा था. रास्ते में बड़े-बड़े गढ़े बन गये थे. हमारी गाड़ी जिस तरह से हिचकोले खा रही थी, उससे लगता था कि गाड़ी अब उलटी, तब उलटी. मुरारी जी इससे बे-ख़बर दिख रहे थे. उनके लिए यह कोई अस्वाभाविक नहीं था. रास्ते को देखकर कहा जा सकता था कि कम-से-कम बीस सालों से उसकी खोज-खबर किसी ने नहीं ली थी... और तभी मुझे याद आया कि मुरारी जी के ऊपर चलने वाले मुकदमों में एक मुकदमा अलकतरा घोटाला का भी है.

खैनी तैयार करके सेक्रेटरी ने मुरारी जी की तरफ़ बढ़ा दिया. वे खैनी को होठों के बीच दबाकर फिर बोलने लगे - 'तो समझे न रहीम जी, हम तो चाहते ही हैं कि मुसलमान भड़कें, कुछ करें. देखिए, हमने आपसे पहले ही कहा कि हिंदुओं को हमने टैकल कर लिया है. उन्हें अगड़े और पिछड़े में बांटकर, फिर पिछड़ों को 'बिचली' और 'दलित' - दो वर्गों में बांटा है. फिर बिचली में से 'वाई' यानि यादवों को निकालकर 'एम' यानि मुसलमानों से जोड़ दिया है और सामाजिक न्याय और मंडल आरक्षणों का झुनझुना इन्हें थमा दिया है.'... तभी गाड़ी का अगला चक्का किसी बड़े गढ़े में धच्च से पड़ा. 'अरे भाई, जरा गड़िया संभल के चलाओ. गड़िया तोड़ेगे क्या ? रास्ते की हालत देखते नहीं ? सभी साले चोर हैं. सब पैसा हज़म कर जाते हैं. और जवाब देना पड़ता है मुरारी को. चारा-चोर कौन.... मुरारी, अलकतरा किसने पिया ? तो मुरारी ने. यानि दूसरों ने कुछ नहीं किया. जो किया, सो मुरारी

दो गीत

कौन ?

✍ डॉ. (श्रीमती) राजकुमारी पाठक

नयन का नीरव निमंत्रण,
भेजता है कौन हर क्षण ?
भावनाओं के मुकुल नित,
कौन करता है समर्पण ?
चपल पलकों से निरंतर,
कौन करता नेह-वर्षण ?
कौन प्रतिबिंबित सुछवि यह ?
पूछता है हृदय-दर्पण.

नयनों का विभ्रम

मेरे भीतर-बाहर तम था ।।
सुमधुर स्नेह-समर्पण बीता,
हर आकर्षण रीता-रीता
जो जड़ चेतन लगे मनोहर -
केवल नयनों का विभ्रम था ।
मेरे भीतर-बाहर तम था ।।
बाहर से भीतर तक जड़ता
स्पंदन बबूल-सा गड़ता,
उर की पीड़ाओं में लथपथ -
हाहाकार बहुत निर्मम था ।
मेरे भीतर-बाहर तम था ।।

१६५, मानस नगर, मथुरा २८१ ००४.

ने किया. वाह रे जमाना. रहीम जी, हमें इस जमाने को बदलना होगा. तो आप मुसलमानों को गोलबंद कीजिए, मैं हिंदुओं को संभाल लूंगा.'

'मगर मुरारी जी यह तो विशुद्ध सांप्रदायिकता और जातीयता की राजनीति हुई. आप तो सेक्युलरिस्ट है. कहां तो उस दिन आपका हाथी की पीठ पर से किया गया एलान कि आप सांप्रदायिक ताकतों का घूम-घूमकर भंडाफोड़ करेंगे और कहां आज खुद ही उसी सांप्रदायिकता का सहारा लेने की सोच रहे हैं ?'

'सुनिए, रहीम जी, आप तो बादशाह अकबर के सेनापति भी रहे हैं ?'

'हां, था तो,' - मैंने कहा.

'तो सेना में हाथी भी होंगे ही ?'

'यह भी कहने की बात है ? बादशाह अकबर की सेना में हाथी न हों, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता.' मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि यह इन्हें अचानक हो क्या गया, जो इस तरह के बच्चों वाले सवाल मुझसे पूछने लगे.

'तो हाथी के दांत भी आपने देखे होंगे ?'

'ज़रूर.'

'तो सुनिए, कविवर, हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते हैं. यह भूल जाइए कि हाथी कि पीठ से मैंने क्या कहा था और जैसा मैं कहता हूं, वैसा ही कीजिए, अगर बाकी ज़िंदगी आराम से बिताना चाहते हैं तो...'

मुरारी जी ने इस एक ही वाक्य से अपनी नज़र में मेरी हैसियत का अहसास करा दिया था और अपनी मंशा का संकेत भी दे दिया था.

मेरे आत्म-सम्मान ने भी जोर मारा. मैंने साफ़ शब्दों में कहा कि 'मुरारी जी, यह मुझसे नहीं होगा. यह जनता के साथ साफ़ गद्दारी है. इस तरह की अपेक्षा तो बादशाह अकबर ने भी कभी मुझसे नहीं की थी. आप गाड़ी रुकवाइए, मैं उतरना चाहता हूं.'

इस पर मुरारी जी दांत पीसते और गालियां देते मेरी तरफ लपके - 'बुढ्ढे, तेरी यह हिम्मत, जो मुझसे जवान लड़ाये ? तुम सम्मान के काबिल नहीं हो. अकबर ने तुमको दरबार से निकालकर गलती नहीं की थी. तुम मधुकरी के ही लायक हो.' और उन्होंने कार का दरवाज़ा खोलकर चलती कार से मुझे धक्का दे दिया.

'मैं रोड पर गिर चुका था लहूलुहान.

उसके बाद की घटना तो तुम जानते ही हो.'

यह कहकर रहीम जी चुप हो गये थे. कमरे की हवा में एक प्रकार का भारीपन उतर आया था. बाहर के लॉन वाले अमरूद से बुलबुल का जोड़ा कब का उड़ चुका था और वहां एक कौवा कांव-कांव कर रहा था. मेरे दोनों बच्चे किरण और किंशुक जग गये थे और बगल वाले कमरे में किसी बात पर झगड़ रहे थे.

बाबा हाथ से अपने अगल-बगल कुछ टटोलने लगे.

'क्या खोज रहे हैं ?'

'अखबार. कहां रख दिया ? सुष्मिता दे तो गयी थी.'

'वह यहां नीचे पड़ा है,' - मैंने अखबार झाड़कर बाबा को थमा दिया.

❐

बाबा मेरे परिवार के एक अभिन्न सदस्य बन चुके थे. वे अब हमारे मेहमान नहीं, बुजुर्ग और अभिवावक थे. बच्चे तो उनके बिना एक पल नहीं रहना चाहते थे. जिस दिन उनको स्कूल नहीं जाना होता, उस दिन वे बाबा के इर्द-गिर्द ही मंडराते रहते. मुझे भी अब टूर पर रहने के दौरान घर की चिंता नहीं सताती थी.

एक दिन मैं टूर से लौटा तो सुष्मिता बतलाने लगी कि 'बाबा अब खुद ही बच्चों को स्कूल छोड़ने और वापस लाने जाते हैं. एक दिन उन्होंने मेरे हाथ से सब्जी वाला थैला छीन लिया. कहने लगे कि मेरे रहते बहू बाजार करेगी ? मैंने विरोध किया तो उलटे मेरे ऊपर ही बिगड़ पड़े - क्या मैं इस परिवार का सदस्य नहीं हूं ? तुम लोग मुझे गैर समझते हो ? कहते-कहते वे रुआंसे हो उठे थे. अब आप ही बताइए, मैं क्या कर सकती थी.'

'तुम कुछ नहीं कहना. बाबा जैसा कहें, वैसा ही करना. उनका पूरा ख्याल रखना,' - मैंने पत्नी से कहा.

अब बाबा बेतकल्लुफ होकर रसोईघर में घुस जाते. सुष्मिता को अपने दरबारी जीवन के दौरान खाये व्यंजनों की विधियां बतलाते. सुष्मिता भी सब्जी बनाकर पहले बाबा को नमक की मात्रा जांचने के लिए प्लेट में रोटी के साथ देती, जैसा आम घरों में रिवाज है. जब मैं घर पर रहता तो बाबा का दिल बहलाने के लिए मित्रों से मिलवाने ज़रूर ले जाता.

एक दिन सुष्मिता कुछ घबराई और उदास-उदास लग रही थी. मेरे वज़ह पूछने पर वह मेरा हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में ले गयी. बाबा अपने कमरे में पलंग पर अधलेटे कोई पुस्तक पढ़ रहे थे. आवाज कमरे से बाहर नहीं जाये, इसलिए उसने दरवाजा भेड़ लिया. - 'सुनिए, मैं तो बहुत डरी हुई हूं. बाबा आजकल उदास रहने लगे हैं. वे कमरे में चहलकदमी करते हुए कभी-कभी अपने दोहे गुनगुनाते हैं, कभी बिस्तर पर लेटे-लेटे छत को निहारते रहते हैं. कल सुबह जब...' कहते-कहते पत्नी रुक गयी थी, मानो किसी अशुभ बात को मुंह पर लाने से डर रही हो.

'कहो न रुक क्यों गयी ?'

'कल सुबह जब उनके कमरे में गयी तो देखा कि बाबा पहले से ही जगे हुए हैं और वे खिड़की के पास खड़े होकर लॉन को निहार रहे थे. चाय लिये मैं चुपचाप उनके पीछे जाकर खड़ी हो गयी. वे बहुत धीरे-धीरे बुदबुदा रहे थे - ऐसा नहीं हो सकता.. ऐसा कब तक चलेगा ? माना कि ये लोग बहुत भले हैं... मेरे हर सुख-आराम का ख्याल रखते हैं... मगर... मगर...'

'बाबा, चाय लायी हूं.'

मेरी आवाज सुनकर बाबा धीरे-धीरे खिडकी से पीछे हटे. एक बार खाली-खाली आंखों से मेरे चेहरे को देखा और चाय ले ली.

'बच्चे अभी तक सोये ही हैं ?' बाबा बात बदलना चाहते थे.

शायद बाबा रातभर सोये नहीं थे. रातभर उनके भीतर आत्म-मंथन चल रहा होगा.

पत्नी की आशंका सही थी. बाबा बातें करते-करते खो-से जाते. कभी उदास हो, फटी-फटी आंखों से खिड़की के बाहर निहारते, फिर भी मैंने बाबा को टोका नहीं. मेरे विचार से सबसे बढ़िया उपाय था वस्तुस्थिति से अनजान बने रहकर बाबा का मन बहलाव करना. बाबा का आत्म-सम्मान, उनका 'इगो' उनकी आत्मा को बेचैन कर रहा था. मैं जानता था कि वे इतिहास-प्रसिद्ध इगोइस्ट हैं. वे चाहते तो बादशाह अकबर से क्षमा-याचना कर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिता सकते थे, मगर उन्हें मधुकरी पर गुज़ारा करना मंज़ूर था, अकबर के सामने माथा झुकाना नहीं.

❐

दूसरी सुबह पत्नी बदहवास-सी मुझे झकझोर कर उठा रही थी - 'अरे उठिए-उठिए. ज़रा सुनिए तो...'

'बात क्या है ? इतनी घबरायी हुई हो ?' मैंने बिस्तर से उठते हुए पूछा.

'देखिए न, बाबा अपने कमरे में नहीं हैं. मैं चाय लेकर गयी तो देखा कि बाबा बिस्तर पर नहीं हैं'- पत्नी सुष्मिता रुआंसी हो उठी थी.

'बाथरूम में देख लिया ?' मैंने पांव से फर्श पर स्लीपर तलाशते हुए पूछा.

'वे वहां भी नहीं हैं. लॉन में भी देख लिया.'

मैं सुष्मिता के साथ फिर बाबा के कमरे में आ गया, मगर बाबा कोई छोटी चिड़िया तो थे नहीं कि वे कमरे के किसी कोने अंतरे में दुबककर बैठे हों. मैं भी अब आशंकाओं से घिर गया था. मैं लगभग दौड़ते हुए गेट तक गया. गेट का ताला खोल कर बगल में रखा था. बाहर रास्ते में दूर-दूर तक नज़र दौड़ायी, शायद बाबा टहलने गये हों. हालांकि बाबा सुबह में कभी टहलने नहीं जाते थे. इस वक़्त वे प्रायः बिस्तर पर पड़े-पड़े कुछ गुनगुनाते रहते थे. मैंने कमरे से लौटकर पत्नी को तसल्ली दी - 'हो सकता है, बाबा टहलने गये हों, थोड़ी देर में आ जायेंगे.'

सुष्मिता की घबराहट बढ़ गयी थी - मुझे तो यकीन नहीं हो रहा. वह कमरे में बेचैन होकर चहलकदमी कर रही थी. तभी मेरी नज़र टेबल पर रखे कागज़ के एक टुकड़े पर पड़ी. मैंने झपटकर कागज़ को उस टुकड़े को उठा लिया. 'अरे, यह तो बाबा की लिखावट में हैं.' - मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा.

'ज़रा पढ़िए तो, क्या लिखा है बाबा ने.' - सुष्मिता मेरे पास आकर खड़ी हो गयी. उसके चेहरे पर चिंता उभर आयी थी.

मैंने पढ़ना शुरू किया - 'बेटे जयनारायण और सुष्मिता, मैं जा रहा हूं. - बिना कहे, चुपचाप, चोर की तरह. अभी भोर के चार बजे हैं. तुम लोग गाढ़ी नींद में सो रहे हो. रोज़ पांच बजे बहू सुष्मिता उठ जाती है. तुम छह बजे के पहले नहीं उठते. उठ जाने पर तुम लोग मुझे जाने नहीं दोगे. इसलिए उसके पहले ही मैं निकल जाना चाहता हूं. किरण और किंशुक तुम लोगों के पास सो रहे होंगे. इच्छा होती है उन्हें गोदी में लेकर दुलराऊं. उठने पर वे मुझे खोजेंगे. मुझे नहीं पाकर वे रोयेंगे, उनका दिल टूट जायेगा. मगर समय रामबाण औषधि है. धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा.

बेटे, आज हिंदुस्तान में आदमी हिंदू, मुसलमान, सिख या ईसाई बनकर ही रह सकता है. हमने किसी हिंदुस्तानी के लिए ज़गह छोड़ी ही नहीं. मैं तो आखिरी उम्मीद लेकर मनीषियों, विचारकों एवं अवतारों के इस राज्य में आया था. हाथी की पीठ पर से दिये गये उनके वक्तव्य ने मेरे भीतर उम्मीद का दीया जलाया था. मगर मुझे क्या पता था कि हाथी की पीठ से कही गयी बात 'हाथी का दांत' होती है. यहां की हालत तो और भी बदतर है. यहां आदमी के लिए सिर्फ हिंदू होना ही काफी नहीं है. उसे ब्राम्हण, क्षत्रिय, कायस्थ, अगड़ा, पिछड़ा, यादव, कुर्मी, दलित या हरिजन होना होगा. इसलिए बेटे, मैं जा रहा हूं किसी ऐसी ज़गह की तलाश में, जहां न हिंदू रहता हो न मुसलमान रहता हो, न सिख रहता हो, न ईसाई रहता हो. आखिर हिंदुस्तान में कहीं-न-कहीं ऐसी ज़गह तो बची होगी, जहां रहने के लिए हिंदुस्तानी होना ही काफी होगा.

मैं जा रहा हूं. तुम लोग सदा सुखी रहो. बच्चों को मेरा बहुत-बहुत प्यार व स्नेह !

तुम्हारा

बाबा रहीम.'

बाबा रहीम की चिट्ठी ने मुझे संज्ञाशून्य कर दिया. पत्नी सुष्मिता खिड़की से लॉन में खड़े अमरूद के गाछ को निहारती हुई आंचल से आंसू पोंछ रही थी. एक मनहूस उदासी में कमरा धीरे-धीरे डूबने लगा था.

❐

पाठकों, बाबा की वह चिट्ठी आज भी मेरे पास सुरक्षित है. इसको मैं एक संग्रहालय में रखवाना चाहता हूं, मगर मेरे एक लेखक-मित्र का सुझाव है कि इसको मैं अपने देश की संसद को भेज दूं. आपका क्या ख्याल है ?

एच-२, टैगोर पार्क (मेन रोड),
नस्करहाट, कोलकाता - ७०० ०३९.

कहानी

निर्मोही

आलोक पांडेय

'बचाव रे निरमोही, हमका बचा लो. ई लोग हमरी जान ले लेंगे.' उसकी हृदयवेधी आवाज अंकित के हृदय के आर पार हो गयी पर वह कुछ नहीं कर सकता था. दरिंदों ने उसके हाथ जो बांध रखे थे.

'ए योगेंद्र, ए अशोक, अरे उसको छोड़ दो रे, जाने दो बेचारी को', लाचार अंकित चिल्लाया पर उसकी आवाज न जाने क्यों गले से बाहर नहीं आयी.

'जा रे निरमोही, ई तू का कई ल ऽ. तूहीं जिनगी भर...', उसने इतना ही कहा और उसकी शेष आवाज योगेंद्र के शरीर के भार से दब गयी.

दोनों अपनी अपनी लहराती तरंगों को शांत कर के जा चुके थे. वह बिखरी हुई घास पर अचेत अवस्था में लेटी हुई थी. अंकित दहाड़ें मार कर रोने लगा और तभी सहसा उसके बंधन न जान स्वयं कैसे खुल गये. वह दौड़कर उसके पास गया परंतु वह वहां नहीं थी. वह दौड़कर धान के खेतों में गया, वहां से गौशाला, फिर भूसा वाले घर में परंतु उसे कहीं नहीं पाया. वह उसके घर की तरफ दौड़ा तेज बहुत तेज; आंधियों में पड़े पीले सूखे पत्ते के समान. खेत, मैदान, झाड़ियों एवं पोखरों को पार करता हुआ वह आकाश मार्ग से बढ़ता ही जा रहा था कि सहसा वह एक छोटी सी नदी में गिर गया. यह नदी कर्मनाशा नदी थी. वह डूबने लगा. नीचे बहुत नीचे वह जा ही रहा था कि डर के मारे उसने अपनी आंखें खोल दी.

नींद टूटते ही अंकित ने स्वयं को दिल्ली स्थित नेहरू विहार कॉलोनी के अपने मकान के ऊपरी कमरे में पाया. वह उठ बैठा पर अभी भी स्वप्न के बोझ से संपूर्ण रूपेण मुक्त नहीं हुआ था. उसने मन ही मन सोचा, 'स्वप्न में घटनाएं अजीब रूप प्रतिरूप लेकर आती हैं.' उसने खिड़की से सोये शहर को देखा. सोया आदमी मरे आदमी की तरह होता है. दिल्ली; मरा शहर ही तो है यह. यहां लोगों की संवेदनाएं मर चुकी हैं या फिर अंतिम सांसें गिन रही हैं. जहां व्यक्तित्व का पैमाना ज्ञान नहीं धन हो जाता है, वह ज़गह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है. वह भी स्वयं तो इसी शुष्क होते शहर की उपज है. खिड़की से अलसाई रात में कुछ अनजानी लकीरों ने धीरे-धीरे साकार रूप ग्रहण किया. उसके सामने सुमन का चेहरा हंसने लगा. उसने शर्म से अपना मुंह फेर लिया और कुर्सी पर आकर बैठ गया पर उसकी हंसी बढ़ती ही जा रही थी. अपना सिर कुर्सी पर टिकाते हुए उसने अपनी आंखें बंद कर लीं. उसे विगत समय की कुछ घटनाएं साफ़-साफ़ दिखाई देने लगीं.

दो वर्ष के पश्चात एक बार पुनः जब अंकित अपने गांव 'तरांव' आया तब उसने जिस वस्तु में सबसे अधिक परिवर्तन पाया वह थी तालाब के पास ग्राम पंचायत की ज़मीन. उस पर दस बारह कच्चे मकान और कुछ झोपड़ियां खड़ी थीं. उसके बड़े पिताजी के छोटे लड़के अशोक ने बताया कि ग्राम प्रधान ने यह ज़मीन गांव के कुछ अत्यंत गरीब परिवारों को दे दी है. यहीं तालाब के पास उसका डेरा भी था जहां उसके पशु, अनाज, भूसा इत्यादि रखा जाता था. घर के बड़े बुजुर्ग रात में यहीं आकर सोते थे. अंकित भी रात में भोजन के बाद यहीं आकर सोता था. उसने यहीं सर्वप्रथम सुमन को देखा था जो उसके बनिहार (नौकर) रामाश्रय की बेटी थी. उन लोगों ने भी अपना मकान वहीं बना लिया था. कुएं से पानी भर कर उठाते वक़्त उसके शरीर की लचक, उभार और कसावट देखकर वह हतप्रभ हो गया. 'विश्व सुंदरी प्रतियोगिता' में निर्धारित संपूर्ण शारीरिक मापदंडों को कितनी कुशलता से परिपूर्ण कर रही थी. जिसे पाने के लिए शहरी बालाएं न जाने क्या क्या उद्योग करती हैं. प्रकृति के सानिध्य में रहने वालों को कुछ वस्तुएं कितनी आसानी से प्राप्त हो जाती हैं !

रात्रि में डेरे के बरामदे में सोये अंकित की आंखों के सामने सुमन की छवि रह-रह कर नाच जाती. उससे रहा नहीं गया और उसने अशोक से उसके बारे में चर्चा छेड़ ही दी. अशोक उससे मात्र छः महीने ही छोटा था. उनके मध्य भाई का रिश्ता कम मित्र का अधिक था. वे ऐसी वैसी बातें पहले भी कर चुके थे.

'अशोक! यार, सुमन तो आंखों से उतरने का नाम ही नहीं ले रही है.'

'तू का भाई, पूरे गांव के छोरे उसे नज़र पर चढ़ाये हुए हैं पर वह है कि हाथ ही नहीं लगती. उसका ई गदराया हुआ बदन कि मन करता है...', कहते हुए अशोक ने मदभरी सिसकी ली.

'अबे बेवकूफ; ज़रा धीरे बोल कहीं चाचा सुन न लें.'

'हट बे, ऊ सुन के का करेंगे. वो तो खुद चक्कर में हैं.'

'चुप बे गदहे.'

'ना भाई कसम से.'

[redacted]

अंकित जानता था कि अशोक निरा बम्मड़ है. अक्सर छोटे चाचा और अशोक में न सुलझने वाली हास्य रूपी तकरार होती ही रहती है. बातें करते-करते दोनों सुमन को मन मस्तिष्क में बिठाये नींद की गोद चले गये. रात्रि में सुमन खेतों के पास स्थित पीपल तले आयी और वह सब कुछ स्पर्श करने दिया जो अंकित चाहता था. अंकित उसके होठों की मुस्कुराहट अपने ओठों पर लगाना ही चाहता था कि अशोक ने उसे जगा दिया.

शाम को नीम के पास अंकित और अशोक सुमन के बारे में ही चर्चा कर रहे थे. साथ में अशोक का लंगोटिया दोस्त योगेंद्र यादव भी था. पूरे गांव में अशोक और योगेंद्र 'एक सिक्के के दो पहलू' के रूप में मशहूर थे. दोनों ने स्नातक साथ ही साथ अनुत्तीर्ण किया था और साथ ही साथ खेती में अपना भविष्य तलाशा था. अंकित के साथ वे खड़ी हिंदी में बात करने का प्रयास करते और कर भी लेते. भले ही व्याकरणाचार्य उसमें कई गलतियां निकालते.

'जानते हो भईया. एक दिन शाम के हम अउरी अशोकवा ने उसको बगीचा के पास अरहर के खेत में पकड़ लिये थे लेकिन साली के किस्मत ठीक रहे कि ओने से चंद्रिका सेठ आ रहे थे.'

'अबे जोगींदरा. ए ससुर हमने थोड़े पकड़ा था.' अशोक अंकित से कण मात्र शरमाते हुए कहा.

'अरे पड़ेया जादा बन मत. उस दिन तो छूने छाने में हमसे आगे रहे और आज भैया से लजा रहे हो. गदहा कहीं का.'

'चुप रह अहीर-सहीर कहीं का.'

'चुप रह पांडे-सांडे.'

फिर दोनों अंकित से लज्जावश खाट पर गुत्थम-गुत्था हो गये पर यह उनका झगड़ा नहीं वरन प्यार था. दोनों एक दूसरे को प्रेमवश नाम से कम बल्कि भइयवा, मर्दे, पहलनवा, ससुर के नाती और बकलोल जैसे उपनामों से ज्यादा पुकारते थे और जब कभी उनका प्रेम सर्वोच्च अवस्था में होता तो पहला दूसरे को 'पड़ेया' तथा दूसरा पहले को 'अहीरा' कह कर पुकारता था. 'अरे बैल लोग खटियवा तोड़ब जा का हो !' दादा जी की यह आवाज सुनते ही एक दूसरे को छोड़ दोनों ने गंभीर मुद्रा बना ली. अशोक धीरे से बुदबुदाया, 'ई बुढ़वा तो परेशान कर के रखा है.' तीनों हंसने लगे.

'पर काम कैसे बनेगा भाई', अंकित ने बात आगे बढ़ायी.

'ए भाई एक बात तो साफ़ है कि हम दोनों से ससुरी एकदम खार खाये बैठी है. हम लोगों से तो बना काम भी बिगड़ जायेगा. का रे पहलनवा ?' योगेंद्र ने अशोक के कंधे पर हाथ रख कर कहा.

'तब का हम लोगन के तो फूटी आंख नहीं देख सकती है. हां अगर तू अपना से काम बना सकते हो तो अलग बात है. लेकिन उम्मीद कम है,' अशोक ने कुछ निराश भाव से कहा और

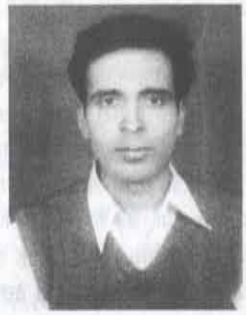

आलोक पाण्डेय

७ जनवरी १९७५, उत्तरौली, ग़ाज़ीपुर (उ. प्र.)

लेखन : *'कादंबिनी', 'माध्यम', 'वंशिकालय' आदि पत्रिकाओं में कुछ निबंध व कविताएं प्रकाशित.*
एक उपन्यास : 'द ऑटोबॉयोग्राफी ऑफ ए रेपिस्ट' व एक कविता संग्रह : 'मैं मरना नहीं चाहता' शीघ्र प्रकाश्य.

संप्रति : *गृह मंत्रालय, भारत सरकार में कार्यरत.*

फिर आगे कहने लगा, 'एक बात और ये सब काम में उसको हम लोगों के बारे में पता न चले नहीं तो उ सोनमुनी चिरई हाथ ना अईहें. समझे.'

'पैसे रुपये के लालच में भी नहीं आयेगी ?' अंकित ने पूछा.

'उम्मीद तो कम है. ऊ क्या मनोज सेठवा उनका के अपना दुकान में अकेले देख के सौ रुपया के नोट देत रहे लेकिन ऊ नोट उसके मुंह पर फेंक के कही कि आपन बहिनिया के दे दीहे.' योगेंद्र ने कहा.

'पर उस वक़्त तुम कहां थे ?' अंकित ने धीरे से पूछा.

'हमको सेठवा ने अपने गोदाम में छुपाया था. ऊ हमरा भी काम बनाने के लिए कहा था. वहीं से हम सुने थे.' योगेंद्र ने मुस्कुराते हुए कहा था.

'अच्छा, अगर पैसे से राह पर नहीं आयी तो प्रेम के खेल में उसे पटाऊंगा. चाहे जैसे हो प्रेम या पैसे से, चाहे दोनों से.' अंकित ने शायद कुछ ज़रूरत से ज्यादा दृढ़ निश्चयी बनते हुए कहा.

'भईया हम लोगन के भूल मत जाना,' योगेंद्र ने ललचाई नज़रों से देखते हुए कहा.

'हं हो अहीर, वह तीन-तीन लोग के थोड़े मानी. एक आदमी को मान जाय वही बड़ी बात है.' अशोक ने निराशा के सागर में आशा का कोई तिनका न देखते हुए कहा.

इस तरह से दो दिन बीत गये पर अंकित को बात बढ़ाने का कोई मौका न मिला. वैसे दोनों की नज़रें कई बार मिलतीं - कभी डेरे पर, कभी कुएं पर, कभी खेत पर लेकिन कोई किसी

से कुछ नहीं कहता. दोनों एक दूसरे की आंखों के बोल को समझने की कोशिश करते. दोनों अवश्य किसी अदृश्य जंजीरों में बंधते जा रहे थे. ऐसा नहीं था कि अंकित को भले बुरे का ज्ञान नहीं था. कभी एकांत में सदवृत्तियां उसे यह सब करने से मना करती थीं परंतु दुष्प्रवृत्तियां जवानी की बलखाती तरंगों का सहारा ले उस पर हावी हो जातीं. जब कभी वह यह सोचता कि अगर उसकी काली करतूतों का पता पापा, बड़े पिताजी या फिर बाबा को चलेगा तो वह कैसे मुंह दिखा पायेगा. आख़िर वह अपने उस बाबा का पोता है जिसके चरित्र की दुहाई पूरा गांव देता है. नहीं नहीं उसे ऐसा नहीं करना चाहिए. वह अशोक और योगेंद्र के जैसा नहीं है वह तो जे.एन.यू. में पढ़ने वाला समाजशास्त्र का होनहार विद्यार्थी है. उसकी समाजशास्त्र की किताबें मात्र सफ़ेद पन्ने प्रतीत होतीं जब वह फलों से लदी डालियों के समान सुमन के गदराये बदन को देखता है. भूख लगने पर रामायण, महाभारत की आदर्शवादी बातें कहां याद रहतीं हैं !

अंकित बार-बार उसके इर्द-गिर्द बना रहता था पर साथ ही साथ अन्य लोगों के समक्ष यह भी प्रदर्शित करने से नहीं चूकता कि वह उसे तनिक भाव नहीं देता है. चार-पांच दिनों में सुमन के छोटे भाई से उसकी अच्छी-खासी पहचान हो गयी थी. वह अक्सर एक या दो रुपये का सिक्का उसे दे देता जिससे वह दुकान से कंचे ख़रीद लेता. एक दिन उसकी दादी किसी कार्यवश घर से डेरे पर आयीं और वहां से रामाश्रय के घर जाने लगीं तो अंकित भी उनके साथ हो लिया.

'आई ए मईया. आव ऽ ए अंकित. चार दिन से यहां आईल बाड़ ऽ और आज काकी के घर के याद आवत बा,' कहती हुई सुमन की मां खाट से उठ ज़मीन पर बैठ गयी और दादी मां खाट पर बिराजमान हो गयीं. अंकित भी खाट पर एक तरफ सिकुड़ कर बैठ गया.

'का ए रामआसरे की बहू. ए साल छट करे के बा न ?'

'हं ए मईया.'

'अरे त ऽ... तनी रामआसरे से अमवा के लकड़िया फड़वा देतू. अब केतना दिन हईये ह ऽ. काल नाहीं परसों और तू हो उहे में से ले लेतू.'

'आछा ए मईया. आज उनका के गाजीपुर से अवते कह देब.'

'केह ऽ माई ?' कहती हुई धुएं से अस्त व्यस्त सुमन कमरे से बाहर निकलकर आंगन में आयी और अंकित को देखते ही शरमा सी गयी.

'का एक सुमनी. अरे बचीया तू त गूलर के फूल हो गईल हई. कहियो घरे नईखु आवत.'

'आईब ए मईया अभी तनी धान के कटाई में लागल बानी.'

'आ अभीये खाना बना रहल बाडू का ?'

'अरे ह ए मईया. ऊ रघुवा के पेट में न आग लागल बा.' इस बार सुमन की मां ने कुछ वास्तविक और कुछ बनावटी गुस्से में कहा. सुमन भीतर जा चुकी थी.

'ए काकी हो,' अंकित ने कहा

'का ए हमार बाबू,' सुमन की मां ने बड़े प्यार से कहा.

'ज़रा आपका घर देख लूं.'

'देख ल ऽ... ये हमार करेजा लेकिन गरीब क घर का देखब ऽ... दूगो रूम बा अउरी दसगो बर्तन.'

अंकित आंगन से पहले कमरे में और वहां से फिर सुमन वाले कमरे में गया. भीतर प्रवेश करते ही रघू को खाना खाते पाया. सुमन ने अपना दुपट्टा ठीक किया.

'क्यों पहलवान अकेले अकेले ?'

'आव ऽ... भईया तूहों खा.'

'मारब बेलनवा से, आपन जूठे खिअईबे रे.' सुमन ने रघू को हल्के से बेलन दिखाते हुए कहा.

'तो उससे क्या हुआ ?' अंकित ने उसके पास बैठते हुए कहा और उसमें से एक टुकड़ा रोटी और थोड़ा गुड़ निकालकर खा लिया. दोनों भाई बहन अवाक और खुश भी; शायद खुशी इस बात की थी कि समाज के एक ऊंचे तबके ने प्रथम बार उनका जूठन खाया था और उन्हें समाज में बराबर होने का एहसास दिलाया था.

'पर जानते हो रघु, आटे में नमक, प्याज, मिर्च मिला रोटी बनाकर खाने में बड़ा मज़ा आता है.'

'बनवाउं का भईया ?'

'अभी रहने दो; बाद में बनवाकर खा लेना.'

'दीदी रे. एगो हमके अउरी एगो भईया के बना दे न ऽ.'

'पूछ ऽ... त बनाईब त खईहन.'

'खईब ऽ... न भईया ?'

'हां पर यहां नहीं; छुपाकर डेरा पर लाना.'

'अच्छे.'

इतना कह अंकित कमरे से निकल आया और कुछ देर बाद दादी के साथ डेरे पर आ गया. दादी घर पर चली गयीं और वह रोटी का इंतज़ार करने लगा. छुपती-छुपाती हुई रोटी लायी गयी. कोई रोटी लाकर खुश, कोई रोटी खाकर खुश और शायद कोई रोटी भिजवा कर खुश.

वह सिंदूरी शाम छट की शाम थी. बड़े, बूढ़े और बच्चे पूजा का सामान लेकर तालाब की तरफ बढ़े जा रहे थे. औरतें रंग-बिरंगी साड़ियों में लिपटी छठ व्रत का गीत गाते हुए तालाब की ओर चल रही थीं. ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो इंद्रधनुष गांव की गलियों में ही उतर आया है. नवयौवनाएं अपने सर्वोत्तम परिधान में थीं. अंकित बड़े पिताजी और चाचा के साथ घाट पर आ चुका था पर उसकी नज़रें सुमन को खोज रही थीं. वह अशोक का

बुलाने के बहाने से डेरे पर आ गया. वह आकर नीम के नीचे खड़ा हो गया. डेरे के भीतर अशोक जानवरों का चारा काट रहा था. कुछ देर में सुमन नीले रंग की साड़ी पहने बाहर निकली और उसे नीम के पास देख शर्माती हुई भीतर घुस गयी और पुनः अनजान बनने की कोशिश कर बाहर आयी और किसी का रास्ता देखने लगी.

'किसे खोज रही हो ?'

'रघुआ के. अभी तक ना आईल.'

'कोई काम है है क्या ?'

'हां! ऊख लेके चले के बा.'

'और बाबूजी कहां हैं ?'

'ऊ तो पहीले ही टोकरी लेके घाट पर गईलन.'

'मैं लेता चलूं.'

'नाहीं ऊ अवते होई. ....ऊ का आ रहल बा.'

सुमन रघु के पास आने का इंतज़ार करने लगी. अंकित ने कुछ कहने का सही मौका पाया.

'एक बात कहूं, सुमन.'

'का ?', उसने पूछा और अंकित को चुप देख और रघु को नज़दीक आता देख बोली, 'का ह ऽ... जल्दी कह ऽ...'

'रहने दो बाद में.'

वह कुछ कह न सका तब तक रघु आ गया और वह उसे लेकर भीतर चली गयी. रघु पांच ईख का बोझ लेकर बाहर आया और अंकित तथा अशोक के साथ पोखरे की तरफ चल दिया. सुमन उन तीनों के पीछे अपनी मां और चार पांच औरतों के संग गीत गाती हुई आ रही थी, 'कांच ऽ... ही बांस के बहंगिया,. बहंगी लचकत जाय.'

सूर्य अस्त हो गया. सभी लोग अपने-अपने समान के साथ घर की तरफ लौट पड़े परंतु यह त्योहार अभी ख़त्म कहां हुआ था. पुनः चार बजे सुबह से ही लोग तालाब के किनारे इकट्ठा होने लगे. ठंड का मौसम शुरू हो चुका था. कहीं-कहीं लोग पुआल जलाकर आग सेंक रहे थे. व्रतधारी औरतें ठंडे पानी में खड़े होकर सूर्य देवता का इंतज़ार कर रही थीं. कुछ औरतें किनारे बैठी गा रही थीं, 'मारबो जे धनुष से सुगा के, सुगा जईहें मुर्झाय.'

सूर्य देवता अपने सात घोड़ों के रथ पर सवार हो पूर्व दिशा की ओर से अवतरित हुए. व्रतधारियों ने जल और दूध की धार से उनका शत-शत अभिनंदन किया. त्योहार समाप्त हो गया. लोग घाट घाटर घूमकर प्रसाद मांगने और बांटने लगे.

अंकित और अशोक घर से प्रसाद लाकर अपने इष्ट मित्रों तथा मजदूरों को प्रसाद बांट स्वयं भी उसका आनंद लेने लगे. अंकित अशोक को डेरे पर अकेले छोड़ सुमन के घर चला गया. सुमन की मां ने उसे प्रसाद दिया और अपने काम में लग गयी. सुमन और अंकित घाट पर हुए कुछ हास्य क्षणों को एक दूसरे से कह हंस रहे थे. तभी एकाएक सुमन कुछ गंभीर होती हुई बोली, 'कल का कहत रहल ऽ...'

'कुछ नहीं बस ऐसे ही.'

'बस ऐसे ही क का मतलब.'

'बस ऐसे ही; शाम को बताऊंगा. झोपड़ी के पास अकेले में.'

'अभी लाज लागत बा का ?'

'हं... हो,' अंकित ने कुछ इस अंदाज में कहा कि दोनों हंसने लगे. तभी अशोक आ गया.

'तू यहां बैठे हो और उधर तोके बाबा खोज रहे हैं.'

अशोक को देख सुमन ने मुंह फेर लिया. सुमन की मां ने अशोक को भी प्रसाद दिया. दोनों बाहर आ गये. अशोक ने प्रसाद अपनी गाय को खिला दिया.

'यह क्या रे नालायक.'

'हट हम दुआध-सुसाध के घर क नहीं खाउंगा.'

'अबे गदहे मार यह प्रसाद था.'

'इसीलिए तो गाय को खिला दिया नहीं तो उनके मुंह पर फेंक देता.'

दोहे

✍ डॉ. सुरेंद्र वर्मा

हम कहते हैं दुःख जिसे, वह सुख का है पक्ष ।
परत खुरच कर देख तो, उजला अंतर-कक्ष ।।

मत सोचो ऐसा सदा बांटेगी दीवार ।
दीवारों से घर बना, जहां बसा है प्यार ।।

कुंभकार ने रच दिये कैसे कैसे पात्र ।
इक-दूजे को पढ़ रहे, सभी परस्पर छात्र ।।

मत छोड़ो ढीला उसे, कसकर रखो सितार ।
इतना भी पर मत कसो, टूट जायें जो तार ।।

किसने चाहा था हमें, हमने चाहा कौन ।
चुपचुप चाहत बोलती, हमसे तुमसे मौन ।।

बिकता है सब कुछ यहां, यह मीना बाज़ार ।
कीमत केवल चाहिए, बोलो क्या दरकार ।।

आयी जी श्रृंगार कर सजी धजी सी मौत ।
भागी उल्टे पैर वह, देख ज़िंदगी सौत ।।

अंदर ढूंढ़ा, ढूंढ़ा बाहर, पाया नहीं अमित्र ।
सिरहाने बैठा मिला, इक दिन लेकिन मित्र ।।

१० एच आई जी, १-सर्कुलर रोड,
इलाहाबाद-२११००१

'क्या तुम भी पढ़ लिख कर जाति पाति में लटके हो.'

'सुमनी से चक्कर चलाना है तो जाती पाती नहीं देख रहे हो.'

'नहीं यार ऐसी बात नहीं है.........पर छोड़ो ये सब बात, बाबा कहां हैं ?'

'अरे वो तो मैं झूठ मूठ कहा था.'

'धत् तेरी की. क्या गाड़ी पटरी पर आ रही थी.'

'राम कसम.'

'कसम से.'

दिन में दोनों की दृष्टि कई बार मिली. दोनों रात होने का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे. कोई कुछ कहने के लिए आतुर था तो कोई कुछ सुनने के लिए. शाम हुई, शाम का तारा मुस्कुराया, पीछे से कई तारे धीरे-धीरे आने लगे. दो दिन से थके होने के कारण औरतें आज रात जल्दी सो गयीं. अंकित चुपके से सुमन की झोपड़ी में आ गया. एक तरफ दो तीन बकरियां बंधी हुई थीं. झोपड़ी में घुप अंधेरा था. झोपड़ी से अंकित के डेरे पर लालटेन की मद्धिम रोशनी स्पष्ट दिखाई दे रही थी.

'का ह ऽ...?'

'शी ई ई ऽ ऽ... धीरे बोलो.'

'का ह जल्दी कह ऽ... हमके डर लागत बा. कोई आ गईल तब.'

'तुम गुस्सा तो नहीं होगी.'

'पहले कह ऽ... त.'

'मैं....तुमसे...प्रेम करता हूं,' कहते हुए अंकित ने रात के अंधेरे में उसे अपनी बांहों में भर लिया. वह सिहर सी गयी.

'पर...,' सुमन की आवाज लड़खड़ाई और उसने कड़े बंधन से अपने को मुक्त करने का असफल प्रयास किया.

'पर वर क्या, मैं तुमसे सच्चा प्रेम करता हूं,' कहते हुए उसने सुमन के कपोलों पर कई कई चुंबन जड़ दिये. उसने भी उसके हाथों को धीरे से पकड़ लिया. तभी अंकित ने कुछ कागज़-सा उसके हाथों में पकड़ा दिया.

'ई का ह ऽ...?'

'कुछ नहीं पकड़ो तो. इन रूपयों से अपने लिए सलवार कमीज़ ख़रीद लेना. बैंगनी रंग का. बैंगनी रंग तुम पर बहुत अच्छा लगेगा,' कहकर उसने उसके हाथों में रूपये पकड़ा दिये. अभी भी उसकी अंगुलियां इधर-उधर चल रही थीं. उसने न चाहते हुए भी स्वयं को उससे अलग किया और कहने लगा, 'आज रात बारह बजे के आस-पास डेरे के पीछे भूसा वाले घर में आना. मैं वहीं तुम्हार इंतज़ार करूंगा.'

रात के बारह बज रहे थे. अंकित भूसा वाले घर में खाट पर बैठा उसका इंतज़ार कर रहा था. इंतज़ार करते-करते आधा घंटा बीत गया. अंदर ही अंदर उसे एक भय सता रहा था कि कहीं बाबा या चाचा इधर आ गये और यहां रहने का कारण पूछ लिया तो क्या ज़बाब देगा. फिर तुरंत सोचता इतनी रात गये उन लोगों का इधर आने का क्या तुक है. भीतर के उमस भरे वातावरण और मच्छरों से वह परेशान था. पर जब वह उस परमानंद के बारे में सोचता तो यह कष्ट तुच्छ ही जान पड़ता. तभी दरवाजे पर एक साया सा उभरा. उसने उसे धीरे से अंदर बुला लिया और दरवाज़ा बंद कर दिया. संपूर्ण गांव क्या संपूर्ण जगत में उन दोनों के लिए यह कोई सामान्य घर नहीं था. नीलगगन में अष्टमी का चांद अपनी संपूर्ण चांदनी इसी घर के छप्परों पर बरसा रहा था, पुरवा की सारी सोंधी सुगंध इसी घर के दरवाजे पर रुकी थी, रात्रि की सारी सिहरन इसी घर की कच्ची दीवारों के रंध्रों में ठहरी हुई थी. कोई भी पक्षी चहक कर रात्रि की इस असीम शांति को भंग करना नहीं चाहता था. कुछ समय बाद दरवाज़ा खुला. चांद की किरणों ने चुपके से भीतर झांका, सोंधी सुगंध धीरे से भीतर घुस गयी और रंध्रों से होती हुई ठंडक भीतर आ गयी. खगों ने भी अपने आपको रोकने में असमर्थ पाया और आख़िर चहक ही दिये. अंकित बाहर आ गया और डेरे पर अपने बिछावन की तरफ चल दिया. सुमन भीतर अपने कपड़े ठीक कर रही थी कि अचानक दो लोग भीतर घुस गये. इससे पहले कि वह कुछ समझ पाती कि दोनों ने दरवाज़ा बंद कर दिया. आसमान में कुछ बादल आये और चांद शरमाकर बादलों में छुप गया.

अंकित अपने बिछावन पर लेटा हुआ था. मनुष्य का मस्तिष्क दैवीय एवं पाशविक प्रवृत्तियों का वास है. एक के सोने पर दूसरी जग जाती है. वासना की तरंगें जब गर्त में चली गयीं तो भावुकता, संवेदना की तरंगें किनारे पर आकर हिलोरें मारने लगीं. वह सोचने लगे, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था. उसने अशोक और योगेंद्र की बातों में आकर उसे छलने का खेल क्यों खेला ? वह तो सिर्फ़ उसके लिए आयी थी. उसे तनिक भी दया क्यों नहीं आयी थी ? वह इतना निर्मोही कैसे बन गया ? वह ऐसा तो नहीं था. जिस योगेंद्र से वह अपरंपार घृणा करती थी इस समय वही उसके शरीर को क्रूरता से रौंद रहा होगा.' उसकी इच्छा हुई कि वह जाकर उसे बचा ले. पर वह केवल और केवल सोच सकता था और करवट बदलने के सिवा कुछ नहीं कर सकता था. लगभग बीस मिनट बीत जाने के पश्चात जब दोनों नहीं आये तो फिर वह चुपके से भूसा वाले घर की तरफ बढ़ा. डेरे की पिछली दीवार के पास दोनों झाड़ियों के समीप बैठे मिले.

'काम हो गया तो अब यहां क्या कर रहे हो ?' वह गुस्से में मगर धीरे से भुनभुनाया.

'तू चलो ना. हम लोग आ रहे हैं,' उन दोनों ने धीरे से कहा.

'वह चली गयी न,' अंकित ने हल्के से पूछा.

'हां, वह चली गयी. तू जा ना हम लोग आ रहे हैं,' योगेंद्र फुसफुसाया.

'तो अब यहां क्या काम है ?' उसने दांत पर दांत चढ़ाते हुए कहा. उसे कुछ अधिक क्रोध आने लगा था. तभी उसने भूसा वाले घर का दरवाज़ा खोल किसी को दक्षिण की ओर तेज कदमों से जाते हुए देखा.

'अरे साले, कुत्ते यह कौन था रे, अभी तक वह गयी नहीं.'

'भईया उ सेठवा रहे,' योगेंद्र ने सूखे गले से कहा.

'कौन सेठवा ?'

'मनोजवा.'

'पर कमीना कहीं का मैंने तो केवल तुम दोनों को....' कहते हुए अंकित ने योगेंद्र की गर्दन पकड़ ली. अशोक ने उसकी गर्दन छुड़वायी. अंकित ने रात की मजबूरी समझ उसकी गर्दन छोड़ दी.

'अबे बेवकूफों, वह मर जायेगी रे,' अंकित कुछ घबराया सा बोला.

'मरेगी नहीं ख़ाक, उ बड़े-बड़े घाट का पानी पी है,' इस बार अशोक ने कुछ व्यंग्यात्मक लहजे में कहा.

'अच्छा चलो अब चला जाय. वह चली जायेगी,' योगेंद्र ने कहा.

'अरे डोम कहीं का ! वह घर से निकल नहीं रही है और तुम लोग चलने के लिए कह रहे हो..... तुम लोग चुपचाप डेरे पर जाओ मैं उसे देख कर आता हूं,' कहता हुआ अंकित दरवाज़े पर गया. पर उसे भीतर जाने का साहस नहीं हुआ. भीतर सुमन धीरे-धीरे सिसक रही थी. उसकी इच्छा हुई कि वह जाकर उसे अपने हृदय के एक कोने में छुपा ले परंतु उसकी धिक्कारती आत्मा उसे ऐसा नहीं करने दे रही थी. सुमन उठी. वह उसके रास्ते से हट गया. वह भीतर ही भीतर घुटती हुई रात के अंधेरे में गुम हो गयी.

सुबह हुई पर उसे डेरे पर जाने का साहस नहीं हुआ. दिन भर पेट दर्द का बहाना कर घर पर ही सोया रहा. दूसरे दिन सुबह वह दिल्ली जाने के लिये तैयार हुआ. वह खेत वाले रास्ते से जाकर बस पकड़ना नहीं चाहता था परंतु खेत पर ही बड़े पिताजी थे और उनका चरण स्पर्श करना ज़रूरी था. वह भारी मन से खेत वाले रास्ते से चलने लगा. खेत पर पहुंच बड़े पिता जी को चरण स्पर्श कर कुछ बातें करने लगा. सुमन चुपचाप धान काट रही थी और अशोक बोझ बंधवा रहा था. पल पल अंकित को देखने के लिए लालायित रहने वाली सुमन आज चुपचाप नज़रें झुकाये अपने कार्य में संलग्न थी जैसे कि वह उसे जानती ही नहीं. वह चलने के लिए तैयार हुआ. अशोक ने उसका सामान ले लिया. वह जल्द से जल्द सड़क पर पहुंचना चाहता था. सड़क पर पहुंच कर वह बस का इंतज़ार करने लगा. तभी अशोक ने कहा, 'इ अपना रूपीया ले लो और इ कागज़ भी.'

'किसने दिया है ?'

एक सत्यकथा

तिरुपति यात्रा

✍ रघुनाथ प्रसाद 'विकल'

राष्ट्रकवि दिनकर तिरुपति भगवान बालाजी के दर्शन करने के लिए जाने वाले थे. उन दिनों उनकी पुत्री अपनी बच्ची के साथ अपनी ससुराल से वहीं आयी हुई थी.

दिनकर जी को तैयार होकर कहीं जाते देख, बच्ची ने उनसे पूछ दिया - "नानाजी आप कहां जा रहे हैं ?"

दिनकरजी ने ज़बाब दिया - "तिरुपति जा रहा हूं- भगवान वेंकटेश्वर (बालाजी) से मृत्यु मांगने."

और सच में राष्ट्रकवि तिरुपति से लौटकर नहीं आये. वहीं उनका देहांत हो गया. उनके बदले में उनका शव ही पटना आया.

९, किदवईपुरी, पटना - ८०० ००१.

'वही सुमन ने, अभी कुछ देर पहले तुम्हें देने के लिए दिये हैं,' कहते हुए अशोक ने उसे रुपये और कागज़ पकड़ा दिया और आगे कहने लगा, 'चलो भैया मजा आ गया. आम के आम गुठली के दाम. तुम्हारा पैसा भी मिल गया और उ मनोज सेठवा से हम दोनों न अपने ग्रुप में शामिल करने के लिए दो सौ रुपये ऐंठ लिये थे.'

'इस पर क्या लिखा है ?

'खुद पढ़ लेना; पढ़ के हंसोगे.'

बस आयी और वह बस पर सवार हो गया. उसने यात्रियों से नज़र बचा कर तिरछे-आड़े अक्षरों में उकेरे शब्दों को पढ़ा और अपनी आंखें मीच लीं.

❒

उसने अपनी आंखें खोलीं. उसके सोचने का क्रम भंग हो चुका था. वह धीरे से उठा और आलमारी से अपनी डायरी निकाली. डायरी के भीतर अभी भी वह कागज़ का टुकड़ा और पांच सौ रुपये का पत्ता पड़ा हुआ था. उसने फिर तिरछे-आड़े अक्षरों में उकेरे शब्दों को पढ़ा और डायरी बंद कर दी. उसके मस्तिष्क में एक बार पुनः धान के खेतों में बैगनी सलवार कमीज़ पहने सुमन आयी जो हंस-हंस कर कह रही थी, 'जा रे निरमोही. इहे तहार प्यार ह ऽ... तू अइसन काहे कइल ऽ...'

द्वारा श्री आनंद प्रकाश,१०१०, प्रथम तल,
डॉ. मुखर्जी नगर, नयी दिल्ली ११० ००९

कहानी

राइट नंबर : रॉन्ग नंबर

राइट नंबर :

इस मामले की शुरुआत उस वक़्त हुई थी जब मैंने रिलायंस का मोबाइल फोन लिया ही था. शायद तीसरा या चौथा दिन रहा होगा. घंटी बजने पर मेरे हैलो कहने पर फोन करने वाले ने रूबी से बात कराने के लिए कहा. जब मैंने बताया कि ये नंबर किसी रूबी का नहीं, मेरा है तो सामने वाले ने हैरानी से कहा कि यह कैसे हो सकता है, रूबी ने खुद ही ये नंबर दिया है और इससे पहले भी इसी नंबर पर रूबी से बात हो चुकी है. लेकिन मेरे कई बार बताने पर भी सामने वाला शख़्स आश्वस्त नहीं लग रहा था. इसके बाद तो अक्सर दूसरे चौथे रोज़ मेरे मोबाइल पर रूबी के लिए फोन आने लगे. फोन करने वाले जो भी होते, जिद करते कि ये नंबर रूबी का ही है और वे इस नंबर पर पहले भी रूबी से बात कर चुके हैं. हद तो तब हो गयी एक बार दिल्ली विज़िट के दौरान जब मोबाइल की घंटी बजी तो मेरे हैलो कहने से पहले ही सामने से किसी लड़की की आवाज सुनायी दी, 'मम्मी, मम्मी' जब मैंने उसे बताया कि ये उसकी मम्मी का नंबर नहीं, मेरा नंबर है, तो वह हैरानी से बोली कि यह कैसे हो सकता है, ये तो मम्मी का ही नंबर है और ये फोन आपके पास कैसे आ गया. मेरे कई बार समझाने के बाद भी उस लड़की ने अपनी जिद न छोड़ी और बार-बार फोन करके मुझे हैरान करती रही और खुद परेशान होती रही. तीन चार बार के बाद उसकी आवाज में रुआंसापन साफ़ झलकने लगा. कहने लगी कि उसे मम्मी से तुरंत और ज़रूरी बात करनी है और आप हैं कि बार-बार इस नंबर पर आ जाते हैं. मेरे पास कोई उपाय नहीं था कि उसकी और उसकी मम्मी की आपस में बात करा देता. मैंने जब उससे पूछा कि वह बोल कहां से रही है तो उसने बताया कि लोनावला से. तो इसका मतलब हुआ, ज़रूर मुंबई और किसी नज़दीकी शहर में एक ही नंबर दो पार्टियों के पास हो सकता है. इस रहस्य से पर्दा तब उठा जब मैंने उससे पूछा कि वह लोनावला गयी कहां से है ? उसने बताया वह पुणे से आयी है.

अब जा कर मुझे पूरा मामला समझ में आया कि रूबी को फोन करने वाले इतने आत्मविश्वास के साथ मेरे मोबाइल को रूबी का मोबाइल समझ कर बात कैसे करते थे. पुणे का एसटीडी कोड है ०२० और मुंबई का ०२२, बाकी नंबर वही. अनजाने में या बिना एसटीडी कोड के सीधे ही नंबर डायल कर देने से इस बात की पूरी गुंजाइश हो सकती है कि रूबी के लिए फोन मेरे नंबर पर आते रहें. अगर मेरे नंबर पर उसके लिए फोन आ सकते हैं तो इस बात की भी तो संभावना हो सकती है कि लोग बाग मुझसे बात करने के लिए रूबी का नंबर डायल करते रहे हों. मैंने मोबाइल कंपनी से भी फोन करके पूछा कि ये माज़रा क्या है, बार-बार मेरे मोबाइल पर किसी रूबी के लिए फोन क्यों आते हैं तो पहले तो वे यही बताते रहे कि ये नंबर मेरा ही है, लेकिन जब मैंने जोर दे कर कहा कि मुझे बताया जाये कि क्या पुणे में भी यही नंबर किसी रूबी के पास है तो उन्होंने कन्फर्म किया कि हां, पुणे में भी यही नंबर किसी रूबर्टीना रॉड्रिक्स के नाम पर है, बल्कि ये नंबर और भी शहरों में हो सकता है, फ़र्क सिर्फ़ एसटीडी कोड का ही है.

सूरज प्रकाश

अब मेरी परेशानी कुछ हद तक कम हो गयी थी. उसके लिए अब जो भी फोन आते थे, तो राइट या रॉन्ग नंबर की बहस किये बिना मेरे लिए उन्हें बताना आसान हो गया था कि वे मुंबई के एसटीडी कोड के बजाये पुणे का एसटीडी कोड लगाकर यही नंबर डायल करें, रूबी से बात हो जायेगी.

लेकिन असली किस्सा तब शुरू हुआ जब मैं पिछले दिनों एक सेमिनार के सिलसिले में पुणे में ही था. सेमिनार में होने के कारण मोबाइल वाइब्रेशन मोड में रखा हुआ था. इतने में इनकमिंग फोन का संकेत आया. सामने नज़र आ रहा नंबर मेरे परिचितों में से किसी का भी नहीं था. इसलिए फोन अटैंड करने की कोई जल्दी नहीं लगी मुझे. लेकिन जब बार-बार उसी नंबर से फोन किये जाने के संकेत आने लगे तो मजबूरन मुझे सेमिनार से बाहर आ कर फोन अटैंड करना पड़ा. फोन रूबी के लिए था. पिछले कई दिनों से उसके नाम पर कोई फोन नहीं आया था इसलिए उसका नाम भी दिमाग से उतर चुका था. अचानक उसके लिए फोन आने पर याद आया, 'अरे, रूबी भी तो पुणे में ही रहती है और उसका नंबर भी वही है जो मेरा है.' फिलहाल ज्यादा उत्तेजित हुए बिना या बहस किये बिना मैंने फोन करने वाले से यही कहा कि वह मुंबई के बजाये पुणे के एसटीडी कोड के बाद यही नंबर डायल करके रूबी से बात कर सकता है.

सेमिनार के चक्कर में रूबी का फिर ख्याल ही नहीं आया लेकिन बाद में इनकमिंग काल्स के नंबर मोबाइल से मिटाते समय मिस्ड कॉल्स में कई बार नज़र आ रहे इस अनजान नंबर को

[redacted]

देख कर याद आया कि इस नंबर से तो रूबी के लिए फोन किया गया था. तो... तो... क्या, रूबी से बात की जा सकती है ? कम से कम यही बताने के लिए कि हम दो अलग-अलग शहरों में रहते हैं लेकिन हमारी मोबाइल कंपनी भी एक ही है और हम दोनों के नंबर भी संयोग से एक ही हैं. मैंने पुणे का कोड लगाते हुए रूबी का नंबर मिलाया. फोन कनेक्ट होने पर मैंने रूबी के लिए पूछा. लाइन पर वही थी. मैंने अपना परिचय दिया और बताया कि किस तरह से हम दोनों के पास एक ही नंबर है और अक्सर मेरे मोबाइल पर उसके लिए फोन आ जाते हैं. आज अभी थोड़ी देर पहले ही आपके लिए एक फोन आने पर याद आया कि मैं आप ही के शहर में हूं और संयोग से इस समय पुणे में ही हूं, इसलिए जस्ट हैलो कहने के लिए फोन कर दिया. मेरी बात सुन कर वह बहुत हैरान हुई कि कितना मज़ेदार संयोग है. उसने यह भी बताया अक्सर उसे फोन करने वाले बताते रहे हैं कि उसके नंबर के लिए अक्सर रॉन्ग नंबर लग जाया करता था. मैं कुछ और पूछता कि रूबी ने खुद ही कहा कि इस समय वह किसी ऑफिस में है और आधे घंटे के बाद तसल्ली से बात कर पायेगी. उसने फोन करने के लिए मेरा आभार माना. 'नेवर माइंड' कह कर मैंने फोन डिस्कनेक्ट कर दिया.

मैं बेहद रोमांचित महसूस कर रहा था कि क्या तो अजीब संयोग है कि मैं अपने ही फोन नंबर वाली लेडी से बात कर रहा हूं. अगर परिचय कहीं आगे बढ़े तो फोन नंबर याद करना कितना आसान. अपना ही फोन नंबर. वह बेहद शालीनता और साफ़ सुथरी अंग्रेजी में बात कर रही थी.

आधा घंटा बीतते न बीतते उसी की तरफ से फोन आ गया. लेकिन इस बार संकट मेरी तरफ था. मैं अभी भी सेमिनार में था. इसलिए मैंने एसएमएस करके उसे बताया कि फिलहाल मैं व्यस्त हूं. क्या वह बाद में फोन कर सकती है.

बात आयी गयी हो गयी. पुराने यार दोस्तों से मिलने और नये परिचितों के चक्कर में देर तक याद ही नहीं आया कि रूबी से फोन पर बात करनी है. मोबाइल पर निगाह डालने पर देखा, रूबी की तरफ से एसएमएस था -नेवर माइंड, रूबी. सोचा, अब मैं भी फ्री हूं और हो सकता है, वह भी फ्री हो. मैंने एक बार फिर उसका नंबर मिलाया. मेरा नाम सुनते ही ढेरों सवाल पूछने लगी, 'मुंबई में कहां रहते हैं, घर में और कौन कौन हैं, कहां काम करते हैं, किस तरह के सेमिनार में आये हैं, कहां है सेमिनार, और कब तक हैं.' बाप रे, उसने तो पहली ही बार में इतने सारे सवाल पूछ डाले. किसी तरह सरसरी तौर पर उसे कुछेक बातें बतायीं और कुछेक गोल कर लीं. किसी को भी फोन पर पहली ही बार में यह बताना कि हम कहां काम करते हैं और घर में कौन कौन हैं, किसी भी तरह से उचित नहीं लगता. न पूछना, न बताना. पूछने लगी कि क्या कर रहे हैं इस वक़्त तो बताया मैंने कि बस, जरा शाम के वक़्त टहलने के लिए जिमखाना की

१४ मार्च १९५२, देहरादून

लेखन : १९८७ से विधिवत लेखन. 'हादसों के बीच' व 'देस विराना' (उपन्यास); 'अधूरी तस्वीर', 'साचा सरनामे' (गुजराती) व 'छूटे हुए घर' (कहानी संग्रह) व 'ज़रा संभल के चलो' (व्यंग्य संग्रह) प्रकाशित.

अनुवाद : कई प्रसिद्ध पुस्तकों का गुजराती से हिंदी में अनुवाद. अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद ('एनिमल फार्म', 'क्रॉनिकल ऑफ ए डैथ फोरटोल्ड', 'ऐन फ्रैंक की डायरी' तथा 'मिलेना'). इन दिनों चार्ली चैप्लिन की आत्मकथा के अनुवाद में व्यस्त.

इसके अलावा स्टीफन ज़्विग, कॉरेल चॉपेक, फ्रैंज काफ्का, आल्बेयर कामू और ऑस्कर वाइल्ड जैसे विश्व प्रसिद्ध कथाकारों की कई कहानियों के अनुवाद विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित.

संपादन : बंबई पर आधारित कहानियों के संग्रह 'बंबई-१', व लंदन में लिखी जा रही हिंदी कहानियों के संग्रह 'कथा लंदन' का संपादन.

सम्मान : कहानी संग्रह 'अधूरी-तस्वीर' को 'गुजरात साहित्य अकादमी' का प्रथम पुरस्कार (१९९२) व उपन्यास 'हादसों के बीच' को 'महाराष्ट्र राज्य हिंदी अकादमी' का प्रेमचंद कथा सम्मान (२००१) प्राप्त हुआ.

ई-मेल : kathakar@rediffmail.com

तरफ जा रहे हैं. अचानक पूछा उसने, 'आप कब फ्री होंगे और पुणे में कब तक हैं ?'

मैं यह सवाल सुन कर हैरान भी हुआ और रोमांचित भी कि ये सवाल उसी की तरफ से पूछा जा रहा है और मैं परेशानी में डालने वाले इस तरह का सवाल पूछने से बच गया. मैंने हिसाब लगाया, सेमिनार कल यानी शनिवार की शाम तक है और मेरी वापसी का कुछ तय नहीं. परसों रविवार की दोपहर किसी भी वक़्त वापिस जाया जा सकता है. मैंने उसे अपने प्रोग्राम के बारे में बताया. तभी उसने बताया कि वह बाद में फोन करेगी.

अच्छा भी लगा और हैरानी भी हुई कि दो दिन के लिए पुणे आना हुआ और एक बिल्कुल नये किस्म का परिचय होने

जा रहा है. मुलाकात न भी हो, कम से कम फोन पर तो बातचीत का सिलसिला बना ही रह सकता है. ये तो तय है कि वह एक युवा लड़की की मां है. जिस तरह से उसकी लड़की ने मुझसे बात करते हुए बताया था कि वह मम्मी से बात करना चाहती है, आवाज और अंदाज़ से तो यही लग रहा था कि वह लड़की अपनी सहेलियों के साथ लोनावला घूमने आयी होगी. कॉलेज वाली लड़की यानि सत्रह अट्ठारह बरस की उम्र और इस हिसाब से रूबी की उम्र होगी यही कोई चालीस के आस पास.

रात साढ़े नौ बजे फोन आया उसका. वह इधर-उधर के ऐसे सवाल पूछती रही जो आम तौर पर लोग नये परिचय के वक़्त पूछते ही हैं. फोन रखते समय उसने कहा, 'टेक केयर डीयर, कल बात करेंगे.' पिछले आठ घंटे के दौरान हमारे बीच चार बार बात हुई थी.

शनिवार सारा दिन सेमिनार की भेंट चढ़ गया. याद तो था कि रूबी से बात करनी है लेकिन जब भी मैंने फोन किया, उसने एकाध वाक्य के बाद ही कह दिया कि वह बाद में खुद फोन करेगी. मैंने भी कोई उतावली नहीं दिखायी और अपने यार दोस्तों में ही व्यस्त रहा. उसकी तरफ से भी कोई फोन नहीं आया. एकाध बार मुझे याद आया भी होगा तो फुर्सत नहीं रही.

जिस वक़्त उसका फोन आया तब हम रात के खाने के लिए डाइनिंग हॉल की तरफ जा ही रहे थे. पूछने लगी, 'कैसा रहा दिन और कैसी रही शाम, कहां गये थे घूमने आज ?' मैंने बताया कि आज तो दिन भर बेहद बिजी रहे और शाम को यूं ही बस, आस पास ही टहलते रहे और कुछ खास नहीं किया.'

अचानक उसने पूछा, 'कुछ ड्रिंक वगैरह लिया या नहीं ? मैं उसके इस सवाल पर हैरान हुआ कि किस तरह की लेडी है, सारा लेखा-जोखा बिन मिले ही जान लेना चाहती है.'

मैंने उसे बताया कि शाम तो ठीक ठाक रही लेकिन ड्रिंक इसलिए नहीं लिया क्योंकि मैं जिन दोस्तों के साथ था, उनमें से कोई भी पीने वालों में से नहीं था. अब अकेले फिर बाज़ार जा कर अपने लिए कुछ लाने की तुक नहीं लगी.

'क्या पीते हैं आप ?' पूछा उसने.

'वैसे तो बीयर लेता हूं लेकिन ड्रिंक्स में वोदका ही पसंद करता हूं.' बताया मैंने.

तभी वह बोली, 'मुझे भी वोदका पसंद है हालांकि इधर कई दिन से मौका ही नहीं बन पाया है.'

मैं हैरान हुआ कि अरे ये तो अच्छी खासी मॉड लेडी है. ड्रिंक्स भी लेती है और जानकारी भी रखती है. अभी तो हमारी मुलाकात भी नहीं हुई और हमारा परिचय मात्र चार पांच फोन कॉल पुराना है फिर भी उसकी तरफ से इस तरह के सवाल मुझे हैरानी में डाल रहे हैं.

'और क्या पसंद है आपको ?' बात आगे बढ़ाने की नीयत से पूछा मैंने.

'बहुत कुछ पसंद है वैसे तो लेकिन...' उसने ठंडी सांस भरी है, 'ज़िंदगी है कि कुछ एन्जाय ही नहीं करने देती.'

'ऐसा क्या हो गया ?'

'क्या बतायें, जाने दीजिए.' उसने टालना चाहा है.

मैंने उसके मूड को देख कर बातचीत का रुख बदलने की नीयत से पूछा है, 'क्या करती हैं आप ?'

'मैं इस्टेट कन्सलटैंट हूं. बड़ी-बड़ी कंपनियों के लिए लीज्ड फ्लैट्स का इंतजाम करती हूं.'

'ऑफिस कहां है आपका ?'

'मैं घर से ही ऑपरेट करती हूं.'

'काफी क्लायंट्स होंगे आपके और घूमना भी बहुत पड़ता होगा आपको ?'

'हां, काम ही ऐसा है कि सारा दिन घर से बाहर रहना पड़ता है. खैर, मेरी जाने दीजिए, अपने बारे में कुछ बताइए.' कहा है उसने.

मैंने टालना चाहा है, 'ऐसा कुछ भी नहीं है बताने लायक मेरे पास. कभी मिले तो बता भी देंगे.' मैंने टोह लेनी चाही है.

'क्या हम आपसे मिलने आ सकते हैं ?' ये उसकी तरफ से सीधा और साफ़ सवाल था और पूछने में किसी भी तरह का संकोच नहीं था.

'हां, हां, श्योर जब आप चाहें.' अब मैं घिर चुका था.

'कब ?'

'ऐसा कीजिए, कल दिन में तो मैं चला जाऊंगा, दो एक लोगों से मिलने का भी तय कर रखा है. आप एक काम कीजिए, सबेरे ब्रेकफास्ट हमारे साथ लीजिए.'

'कितने बजे ?'

'यही कोई साढ़े आठ के करीब.'

'ठीक है मैं थोड़ी देर में कन्फर्म करके बताती हूं.'

बाद में उसने कन्फर्म किया, 'ब्रेकफास्ट पर ठीक साढ़े आठ बजे आ जायेगी. लेकिन दस मिनट बाद ही उसका फिर से फोन आ गया, 'सुबह तो आना नहीं हो पायेगा, ऐसा करते हैं, मैं दस बजे के आसपास आऊंगी, आपसे खूब बातें करेंगे, वी विल हैव सम नाइस टाइम टुगेदर, आपका मूड होगा तो थोड़ी सी वोदका भी ले लेंगे और लंच हम एक साथ लेंगे.' उसने सारे फरमान एक साथ सुना दिये हैं.

'ओह श्योर, मैं आपका दस बजे इंतज़ार करूंगा.' मैंने उसे गेस्ट हाउस का पता और लोकेशन बता दिये हैं.

मैं हैरान भी हूं और रोमांचित भी. कोई महिला भला बिना मिले किसी के गेस्ट हाउस में आकर खुद गप शप करने, वोदका पीने और लंच साथ लेने का प्रोग्राम कैसे बना सकती है. सबसे ज्यादा मुझे परेशानी उसके इस वाक्य से हो रही है जो उसने हंसते

हुए कहा है कि 'वी विल हैव सम नाइस टाइम टुगेदर.'

क्या मतलब हो सकता है इस वाक्य का. वह दस बजे आयेगी, हम वोदका पीयेंगे, दो पेग... तीन पेग. आखिर दिन में पीने की और वह भी एक अनजान औरत के साथ पहली ही मुलाकात में पीने की एक सीमा हो सकती है और होनी भी चाहिए. उसका ये कहना कि लंच एक साथ लेंगे, लंच लेने गये भी तो एक डेढ़ बजे ही जा पायेंगे. इसका मतलब वह तीन चार घंटे यहां बिताने की नीयत से आ रही है. शादी शुदा और एक बच्ची की मां तो वह है ही, घर में और लोग बाग भी होंगे, मुंबई में तो कोई भी घर परिवार वाला आदमी रविवार का दिन अपने परिवार के बीच ही बिताना चाहता है, और यहां तो ये अनजान मोहतरमा का मामला है जो मेरे साथ तीन चार घंटे गपशप करने, वोदका पीने और 'कुछ अच्छा वक़्त बिताने' की नीयत से आ रही है. समझ में नहीं आ रहा, इस सारे जुमले का क्या मतलब निकालूं.

कहीं कोई ऐसी वैसी औरत न हो. मतलब लाइन से उतरी हुई जो किसी न किसी बहाने शिकार तलाशने की फिराक में रहती हो, लेकिन कल तक तो वह मुझे जानती भी नहीं थी और पहला फोन भी मैंने किया था. भला इस तरह से किसी को अपने चंगुल में कैसे फंसाया जा सकता है. बातचीत से तो भले घर की महिला लग रही है. एक अनजाना सा डर भी लग रहा है कि कहीं किसी जाल में न फंस जाऊं. लेकिन अपने आपको तसल्ली देता हूं कि मैं कोई छोटा बच्चा थोड़े ही हूं और न ही वह कोई जादूगरनी ही है जो मुझे देखते ही मेढ़ा बना डालेगी. आखिर ज़िंदगी में पहली बार तो किसी अनजान औरत से नहीं मिल रहा हूं. फिर मैं अपने गेस्ट हाउस के कमरे में ही तो होऊंगा. अपनी ज़गह पर होने का एडवांटेज तो मुझे ही मिलेगा. बस, एक काम और बढ़ गया बैठे बिठाये. अब मुझे बाज़ार जा कर वोदका वगैरह का इंतजाम करना पड़ेगा.

पता नहीं क्या वज़ह रही होगी कि रात भर सिर दर्द के कारण सो ही नहीं पाया. कई बार उठा, सिर पकड़ कर बैठा रहा लेकिन कुछ सूझा ही नहीं कि क्या करूं. मुझे ये भी पता नहीं था कि मेरे आसपास के कमरों में कौन टिके हुए हैं. और इस बात की भी कोई गारंटी नहीं थी कि उनके पास सिर दर्द की गोली मिल ही जाये. सबेरे पांच बजे के आस-पास ही नींद आ पायी होगी.

सबेरे डाइनिंग हॉल में ब्रेक फास्ट के समय सबसे मिलते समय मुझे इस बात की बहुत तसल्ली हुई कि अच्छा हुआ कि रूबी ब्रेक फास्ट के टाइम नहीं आयी, नहीं तो इतने लोगों को जवाब देना भारी पड़ जाता.

डाइनिंग हॉल में ही एक साथी से सिर दर्द की गोली ली और कमरे में आ कर लेट गया. हालांकि ज्यादातर साथियों की फ्लाइट में अभी समय है और सबका आग्रह भी है कि थोड़ा सा वक़्त तो उनके साथ गुज़ारूं, फिर पता नहीं कब मिलना हो. लेकिन मुझे आराम की सख़्त ज़रूरत है, इसलिए सबसे माफ़ी मांग कर गोली खा कर कमरे में आ कर लेट गया हूं. अभी पौने नौ ही बजे हैं और रूबी के आने में अभी कम से कम एक डेढ़ घंटा बाकी है. इतनी देर में मैं रात की बकाया नींद में से थोड़ी सी तो पूरी कर ही सकता हूं.

मेरी नींद पौने ग्यारह बजे खुली. मोबाइल बज रहा है. पत्नी का फोन है. पूछ रही है वापिस आने का क्या प्रोग्राम है. मैंने उसे बताया है कि रात सिरदर्द की वज़ह से सो नहीं पाया हूं. अभी सो रहा हूं. तीन बजे के आस पास की बस ले कर आ जाऊंगा.

अचानक याद आया कि इस समय तक तो रूबी को आ जाना चाहिए था. पता नहीं आ भी रही है या नहीं. पत्नी के फोन से यह भी ख्याल आया कि कहीं मैं अपनी पत्नी से बेईमानी तो नहीं कर रहा हूं. फिर अपने आपको खुद ही तसल्ली दे दी है कि इसमें बेईमानी कहां से आ गयी. कोई भली महिला मुझसे मिलने आ रही है. हां, यह ज़रूर है कि वह चाय कॉफी के बजाये वोदका पीयेगी. बस, और क्या. इसमें बेईमानी कहां से आ गयी. हम दो भले आदमियों की तरह मिलेंगे, बात बात करेंगे और उसके बाद वो अपनी राह और मैं अपनी राह. मैंने सोचा जब तक रूबी आये, एक झपकी और ली जा सकती है. क्या पता न ही आये. आना होता तो अब तक आ जाती.

इंटरकॉम की कर्कश आवाज से फिर नींद खुली. रिसेप्शन से फोन है, 'कोई मैडम आपसे मिलने आयी हैं.'

वक़्त देखा - बारह दस हो रहे हैं.

बताया मैंने, 'भेज दो और गाइड कर दो ताकि कमरा खोजने में उन्हें तकलीफ़ न हो.'

तो आख़िर आ ही गयी रूबी मैडम. दिल में धुकधुकी हो रही है कि देखने में, व्यवहार में कैसी होगी और कैसे वो पेश आयेगी और कैसे मैं पेश आऊंगा. अपनी धड़कन पर काबू पाने के लिए मैं पूरा गिलास पानी पीता हूं. बिना ज़रूरत बाथरूम जा रहा हूं.

दरवाजे पर नॉक हुई है.

रॉन्ग नंबर :

मैंने धड़कते दिल से दरवाज़ा नॉक किया है. दरवाज़ा खुला है. मेरे सामने जो मर्द खड़ा है, पचास बावन साल के आस पास का है. स्मार्ट लग रहा है. कुर्ते पैंट में है. पर्सनैलिटी से लग रहा है, बड़ा अफ़सर होगा.

मुस्कुरा कर उसने मेरी तरफ हाथ बढ़ाया है लेकिन मैंने जानबूझ कर मुस्कुराते हुए हाथ जोड़े हैं और भीतर आयी हूं. कमरे का जायज़ा लेती हूं. एसी, टीवी, फोन, कार्पेट, बढ़िया फर्नीचर. मतलब किसी ऊंची पोस्ट पर ज़रूर होगा. मेज पर रखी

वोदका की फुल बॉटल, स्नैक्स और लाइम कार्डियल. इसका मतलब बुढ़ऊ ने पूरी तैयारी कर रखी है. आज मुझे निराश नहीं होना पड़ेगा. बेचारा दो घंटे से मेरी राह देखते-देखते थक गया होगा.

'वेलकम रूबी,' मेरा स्वागत किया है उसने और पूछा है, 'देर कहां हो गयी आपको. आप तो दस बजे आने वाली थीं.'

'क्या बताऊं. एक पार्टी के पास जाना पड़ गया. चेक कलेक्ट करना था उनसे. पूरा एक घंटा बैठी रही.' मैंने शुरुआत ही झूठ से की है और ठंडी सांस भरते हुए बात पूरी की है, 'तब जा कर चेक मिला.' अब मैं इस आदमी को कैसे बताऊं कि उसे दो घंटे इंतज़ार कराने के चक्कर में ही मैं साढ़े ग्यारह बजे घर से निकली हूं. पार्टी को जितना इंतज़ार कराती हूं, उतना ही मीठा फल मिलता है. और अगर आदमी इसी उम्र का हो तो पता नहीं मेरे आने तक कितने सपने बुन लेता है. हर तरह के सपने और इन्हीं सपनों की कीमत वसूलती हूं. वैसे भी मुझे पता था अपने गेस्ट हाउस के कमरे से निकल कर बेचारा कहां जायेगा ?

'फिर तो आज आप बहुत अमीर हो गयीं ?' पूछ रहा है.

'अरे नहीं सर, मेरी नयी कंपनी के नाम से चेक दिया है पार्टी ने. पहले तो इस कंपनी के नाम से एकाउंट खोलना होगा, तब जा कर चेक जमा कर पाऊंगी. एक वीक तो लग ही जायेगा.' मैंने पहला दाना डाला है. लेकिन एक बात माननी पड़ेगी. घाघ लग रहा है.

'पानी पीयेंगी आप ?' मेरे थके चेहरे की तरफ देख कर पूछा है उसने ?

'यस सर, पानी तो पीऊंगी.'

पानी दिया है उसने. मैंने पूरी अदाएं दिखाते हुए, पसीना पोंछते हुए और रूमाल लहराते हुए पानी लिया है और अब सोफे पर आराम से बैठ गयी हूं. और उसे ये दिखाने के लिए कि मैं उसमें और उसके पूरे माहौल में दिलचस्पी ले रही हूं, मैं कमरे को एक बार फिर देख रही हूं.

वह हैरानी से मुझे देखे जा रहा है.

पूछ ही लिया है उसने, 'क्या देख रही हैं आप ?'

'इस कमरे का तो बहुत ज़्यादा किराया होगा ?' मेरे सवाल के ज़वाब में वह अपने पलंग पर तकिये का सहारा ले कर आराम से पसर गया है.

'नहीं, हमें किराया नहीं देना पड़ता. ये हमारे ही ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट का गेस्ट हाउस है. नॉन एसी कमरे भी हैं लेकिन हमारे लेवल के ऑफिसर्स के लिए सारे कमरे ऐसे ही हैं.'

'खाने का क्या एरेंजमेंट है ?'

'डाइनिंग हॉल है. खाने का इंतज़ाम वहां है. बस, हमारे एलाउंसेस से थोड़े पैसे काट लेते हैं रहने खाने के.'

'मुझे अभी भी विश्वास नहीं हो रहा है कि एलाउंसेस से थोड़े पैसे काट कर इतनी अच्छी सुविधा मिल सकती है !'

'वोदका पी जाये ?' मेरी बेचैन निगाहों को रोकते हुए पूछा है उसने.

'ओह श्योर,' कहा है मैंने, 'दरअसल, पहले हमारा कैटरिंग का ही बिजिनेस था.' मैंने चुग्गा डालना शुरू किया है, 'हमारे पास कई कंपनियां थीं, पचास साठ का स्टाफ था लेकिन सब कुछ ठप्प हो गया. मेरे हसबैंड को पैरेलिसिस हो गया और सब ख़त्म हो गया.' मैंने उसके हाथ से वोदका का गिलास ले कर अपने दोनों हाथों में घुमाते हुए कहा है. इस्टेट एजेंसी, कन्सलटेंसी, कैटरिंग वगैरह ऐसे काम हैं जिनके बारे में जी भर कर झूठ बोला जा सकता है और पहली मुलाकात में तो इन कामों के ज़रिये मैं अपनी अच्छी खासी इमेज बना लेती हूं. मेरे आगे के सारे कदम आसान हो जाते हैं. देखें, ये जनाब कितनी देर में लाइन पर आते हैं.

'वेरी सैड, ये तो बहुत बुरा हुआ.' उसने अफ़सोस जताया है. आदमी लाइन पर लाया जा सकता है. मेरी कहानी उसे उदास कर दे, यही तो मैं चाहती हूं.

'मैं आपको अपनी कंपनी के क्लायंट्स की लिस्ट दिखाती हूं कितनी लंबी लिस्ट थी.' मैंने गिलास रख कर अपने पर्स में से कागज़ खोजने का नाटक करना शुरू किया है. ऐसे मौकों पर बहुत बड़ा पर्स रखना कितना अच्छा रहता है जिसमें ढेरों कागज़, विजिटिंग कार्ड वगैरह ठुंसे हुए हों. कुछ भी ढूंढने का नाटक करते रहो, फिर और कोई बात शुरू करके ढूंढना अधबीच में ही छोड़ दो. यही किया है मैंने. अब बता रही हूं उसे कि हसबैंड के इस तरह से बैड रिडन होने के कारण सारा काम मुझे ही करना पड़ता है. अब मैंने पर्स में से रूमाल निकाल लिया है. हाथ में रूमाल हो तो आंखों के पास रूमाल बार-बार ला कर रोने का नाटक बेहतर तरीके से हो सकता है. मैंने बात आगे बढ़ायी है, 'अब तो सब कुछ मेरे ही हाथ में है. हर तरह के काम कर लेती हूं मैं. अभी मैंने एक बच्चे का एडमिशन कराया. तीन हज़ार का चेक मिला मुझे. मैं दिखाती हूं आपको.' मैंने एक बार फिर खोजने का नाटक किया है.

अचानक चेक खोजना छोड़ कर पूछा है उनसे मैंने, 'आपके इस इंस्टीट्यूट का कैटरिंग कॉन्ट्रैक्ट मुझे मिल सकता है क्या ? मेरी फैमिली को बहुत बड़ा सहारा हो जायेगा.'

उसने मेरी तरफ देखा है मानो मुझे तौल रहा हो. वह जिस तरह की निगाहों से मुझे देख रहा है, कहीं उसे पता तो नहीं चल गया कि मैं क्या हूं और किस मकसद से आयी हूं. लगता तो नहीं कि इसे बिस्तर तक ले जा सकूंगी. इमोशनल ब्लैकमेलिंग भी पता नहीं चलेगी या नहीं. पता नहीं, आज काम भी हो पायेगा या नहीं.

उसने मेरी बात का कोई जवाब नहीं दिया है और अपना गिलास दोबारा भरा है. मेरे गिलास की तरफ देखा भी नहीं कि खाली है या नहीं. मुझे बेहद भूख लगी है. सुबह से कुछ खाया

नहीं है. स्नैक्स ही तसल्ली से खा रही हूं.

'ये कहना तो बहुत मुश्किल है कि आपको इंस्टीट्यूट का कैटरिंग कांट्रैक्ट कैसे मिल सकता है लेकिन मैं आपको यहां के मैनेजर का कांटैक्ट नंबर वगैरह दे देता हूं. आप बाद में खुद चेक कर लेना.' आखिर कहा है उसने.

'श्योर, मैं उन्हें आपका रेफरेंस दे दूं ?' मैंने चेहरे का रंग बदला है और अपने चेहरे पर हंसी लाने की कोशिश की है. ...जो कुछ करना है जल्दी करना होगा.

'हां, कोई दिक्कत नहीं, आप बता दीजिए मेरा नाम.'

अब ये नयी मुसीबत, मैंने अब डायरी और पेन खोजने के लिए फिर से पर्स खंगालना शुरू किया लेकिन अधबीच में ही छोड़ कर उससे पूछा है, 'आप बॉम्बे के ही रहने वाले हैं क्या ?'

'नहीं, मैं राजस्थान का रहने वाला हूं. मुंबई में तो नौकरी की वज़ह से हूं.'

'घर में और कौन कौन हैं ?' मैंने उसकी टोह लेनी चाही है.

टाल गया है मेरा सवाल. फिर अपने गिलास के साथ-साथ मेरे खाली गिलास में वोदका डालने लगा है. मैंने देखा है कि उसने मुझसे भी ज्यादा तेजी से अपना गिलास खाली किया है, जबकि मैं खुद ज्यादा अपनी नॉर्मल स्पीड से ज्यादा तेज पी रही हूं आज.

अब पूछ रहा है, 'आपको तो अपने काम के सिलसिले में काफी घूमना पड़ता होगा. तरह-तरह के लोगों से मिलना पड़ता होगा.

'हां, हर तरह के लोगों से मिलने जाना पड़ता है. हर तरह के एक्सपीरिएन्स होते हैं. लेकिन लोग हमेशा मेरी मदद करते हैं. काम मिलता रहता है. अभी परसों ही एक बड़ी कंपनी की एक लड़की को पेइंग गेस्ट एकोमोडेशन दिलवाया. एक महीने रेंट मिला मुझे. पता है आपको सर, यहां एस्टेट एजेंट दो महीने का रेंट मांगते हैं लेकिन में सिर्फ एक ही महीने का लेती हूं. नया काम है ना. अभी नये नये क्लायंट्स बनाने हैं.'

अब मैं इसे कैसे बताऊं कि कैसे कैसे पापड़ बेलने पड़ते हैं मुझे इस धंधे में. असली धंधे में. मुझे तो बस, पैसे से मतलब है जैसे भी मिलें. कई बार इतनी मेहनत करने के बाद भी कुछ हाथ नहीं आता. पिछली बार कितनी मेहनत से भारत फोर्ज कंपनी के उस बुड्ढे मैटेरियल मैनेजर पगारे को लाइन पर लायी थी. सोचा था लंबी पारी खेलूंगी उसके साथ और किस्तों में उसे खुश करती रहूंगी. दस चक्कर कटवाये उसने तब जा कर कुछ बात बनी थी. मैं चाहती थी कि जो कुछ करना है, करे लेकिन काम तो करे मेरा. पूरा काम मिल जाता तो कम से कम तीस हजार बचते. लेकिन न हाथ रखता था न रखने देता था. आखिर में मुझे यही हसबैंड के बेड रिडन होने की कहानी सुनानी पड़ी तो मेरे कंधे पर हाथ रख कर सीरियस हो कर बोला था, 'यू आर लाइक माई यंगर सिस्टर, आइ विल डेफिनेटली हेल्प यू.' लेकिन जब ऑर्डर देने का वक़्त आया तो यही बुड्ढा एडवांस पंद्रह पर्सेंट की मांग करने लगा. सीधे मुंह पर ही मांग लिया. नो रिलेशंस इन बिजिनेस. आपको सिस्टर बोला तो काम भी तो कर रहा हूं. कहां से देती मैं. होते तो देती भी. जब सिस्टर बना लिया तो सेक्स से थोड़े ही मानने वाला था. बिस्तर पर आता तो फिफ्टीन पर्सेंट कैसे मांगता. हलकट कहीं का. मेरे पांच सात दिन बरबाद किये.

'हां सो तो है, किसी भी नये काम में ये सब तो करना ही पड़ता है.' दार्शनिक अंदाज में बोल रहा है.

अचानक उसने ये सवाल पूछ कर जैसे मुझे एकदम नंगा ही कर दिया, 'एक बात बताइए रूबी, मैं कल से इस बारे में सोच रहा हूं.

अब गयी काम से. पता नहीं क्या पूछ बैठे, कहीं इसे मेरी असलियत तो पता नहीं चल गयी.

'पूछिए न सर,' मैंने डरते-डरते कहा है.

'आप पहली बार मुझसे मिलने आ रही थीं और आपने मुझसे मिले बिना ही मेरे साथ ड्रिंक लेने का प्रोग्राम बना लिया. आम तौर पर लेडीज़ से इतनी बोल्डनेस की उम्मीद नहीं की जाती. आइ मस्ट से, यू आर रियली बोल्ड एंड स्टेट फॉरवर्ड पर्सन.'

आखिर घेर ही लिया कंबख्त ने. ज़रा भी ऐसा नहीं लगा इसे, ये कहते हुए कि ये बात किसी लेडी से कैसे कही जा सकती है कि आपके आने का मकसद क्या है. हद है. ज़रा तो सोचता, मुझे खराब लग सकता है. अब तो मेरे सारे दांव बेकार जा रहे हैं. क्या जवाब दूं इसका. इसका मतलब, अब मैं चाह कर भी इसे बिस्तर तक नहीं ले जा सकती. कैसे कहूं कि मैं इसी मकसद से आयी थी कि कैसे भी करके हजार पांच सौ झटक सकूं. यही मेरा पेशा है और यही मेरा तरीका है. मैं कैसे बताऊं इसे कि मैं कोई भी कांटैक्ट बेकार नहीं जाने देती. इंश्योरेंस एजेंट की तरह. दिन दिन भर भटकती रहती हूं और लच्छेदार बातों से लोगों को बेवकूफ बना कर अपना काम निकालती हूं. एक एक आदमी को टटोलती हूं. धोखे भी खाती हूं और कई बार एक पैसा पाये बिना लुट कर भी आती हूं. लेकिन यही काम है मेरा तो कैसी शर्म इसमें. लेकिन आपका मामला अलग है जनाब. आप ही ने तो पहला फोन किया था, भला मैं इतना अच्छा मौका हाथ से कैसे जाने देती.

मैंने इस बात का जवाब देने में भरपूर वक़्त लिया है और अपने चेहरे का रंग बदला है, सोफे से खड़ी हो गयी हूं, और घूम कर पूरे कमरे का एक चक्कर लगाया है. टीवी ऑन करके ऑफ किया है और फिर चल कर उसके पलंग के पास आयी हूं. पलंग पर अभी भी पसरा लेटा है वह. मेरे एकदम निकट आने से चौंक गया है. घबरा कर पीछे हटा है कि पता नहीं क्या करने मैं उसके इतने निकट आ गयी हूं. मैंने उसकी आंखों में झांका है.

अचानक ही मेरा मोबाइल बजा है. धत्... इसे भी इसी वक़्त ही बजना था. मैं वापिस सोफे तक आ गयी हूं. फोन उठा कर देखा है और इन्कमिंग कॉल का नंबर देख कर फोन डिस्कनेक्ट कर दिया है. हसबैंड का है. ज़रा भी चैन नहीं लेने देते. ज़रा घर से बाहर निकली नहीं कि फोन पर फोन.

इस बार मैं उसके नज़दीक नहीं गयी हूं और सोफे पर बैठते हुए बोली हूं, 'सर, मुझे विश्वास था कि आप भले आदमी हैं इसीलिए मैं आपसे मिलने आयी हूं. मुझे पता है आप सर, आप इतने बड़े ऑफिसर हैं, मेरे साथ कोई जबरदस्ती तो नहीं ही करेंगे. आई हैव फेथ इन यू सर.'

'कमाल है. बिना मिले ही मुझ पर इतना भरोसा ?' उसका मूड बदला है.

'सर, मैंने भी दुनिया देखी है. फोन पर बात करते हुए भी हमें पता चल जाता है कि कौन कैसा है और किसके पास जाना चाहिए. आप मेरे पहले दोस्त हैं सर, जिनसे फोन के ज़रिये परिचय हुआ है. और मुझे पता है, मैं आपके पास बिल्कुल सेफ हूं. लाइक ए ट्रू फ्रेंड.' मैं पता नहीं क्या क्या बोले जा रही हूं. अब मुझे सारे खेल को तुरंत बदलना होगा. सेक्स इस नाउ आउट. सीधे-सीधे मदद मांगनी ही होगी. और कोई तरीका नहीं है.

आखिर मैंने कह ही दिया है, 'सर, लेकिन मुझे आपकी मदद चाहिए.'

'बोलिए रूबी, मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं ?'

अब वह भी समझ रहा है कि कुछ ऐसा घटने जा रहा है जिसके बारे में उसे पहले से तैयार रहना चाहिए था.

'मुझे कल अपने बेटे का नाइन्थ में एडमिशन कराना है और मुझे वन थाउजेंड रूपीज चाहिए. मेरे पास तीन चार चेक हैं लेकिन आपको बताया ना, सर, एकॉउंट पेयी हैं सारे और मेरी नयी कंपनी है. कंपनी का एकॉउंट खुलवाना ही भारी पड़ रहा है. जब भी आप अगली बार आयेंगे, मुझे सिर्फ़ एक दिन पहले फोन कर देंगे तो मैं जहां कहेंगे मैं पूरे पैसे ले आ जाऊंगी. आप तो यहां आते रहेंगे सर. अब तो इस नयी फ्रेंड की ख़ातिर भी आपको आना होगा. आयेंगे न सर ? मेरी ख़ातिर.'

'लेकिन डीयर, मैं जितने पैसे लाया था, ज़्यादातर तो ख़र्च कर दिये हैं.' वह बता रहा है, 'ये ऑफिशियल ट्रिप थी इसलिए ज़्यादा लाया भी नहीं था. मेरे पास मुश्किल से पांच सौ होंगे. ढाई सौ बस के लिए और पचास के करीब ऑटो के लिए. रीयली सॉरी रूबी, मुझे कल भी बता दिया होता तो.'

'सर, आज वाली पार्टी ने कैश देने के लिए कहा था लेकिन एकॉउंट पेयी चैक दे दिया है.'

ये तो दिक्कत हो गयी. बुड्ढा खाली हाथ टरकायेगा क्या. साथ ही डर भी लग रहा है कि कहीं चेक दिखाने के लिए ही न कह दे. मैंने इतने सारे चेकों का ज़िक्र कर तो दिया है और पर्स में चेक तो क्या बीस रुपये भी नहीं हैं.

'वो तो ठीक है, लेकिन मेरे पास सचमुच नहीं हैं. ये दो ढाई सौ हैं, अब अगर इनसे तुम्हारा काम चलता हो.'

ये तो पूरा घाघ निकला. अगर बिस्तर तक भी ले जा सकती तो शायद बात बन जाती. कुछ तो निकालता. अब तो गयी बाजी हाथ से. दो सौ से क्या बनेगा. शायद कुछ और निकालने को तैयार हो जाये. लेकिन ज़्यादा से ज़्यादा तीन सौ दे देगा. जब इतने ही मिलने हैं तो और वक़्त बरबाद क्यों करूं. इतने ही ले कर चैप्टर को यहीं क्लोज़ करती हूं.

मैंने झट से कहा है, 'सर, आप कितने बजे जायेंगे ?'

उसने घड़ी देखी है, 'इस समय एक पैंतीस हो रहे हैं, यही कोई तीन चार के बीच. क्यों ?'

'एक काम करती हूं मैं, थोड़ी देर के लिए जा रही हूं. बस, गयी और आयी, फिर आराम से बातें करेंगे. एक और पार्टी से दस मिनट का काम है, बस मिलना भर है. मैं वापिस आ ही रही हूं. आप आठ बजे के करीब चले जाना.'

'लेकिन आठ बजे जाने से तो मैं रात बारह बजे घर पहुंच पाऊंगा. बहुत देर हो जायेगी.'

'नहीं होगी देर सर, मैं बस, गयी और आयी, आप मेरी राह देखना. बहुत ज़रूरी काम है मुश्किल से बीस मिनट लगेंगे.'

'लेकिन रूबी, आपके पास वैसे भी पैसे की कमी है, ऑटो में जाने आने के सौ डेढ़ सौ क्यों खर्च करती हैं ?'

'आप हैं न सर, मुझे किस बात की चिंता.' मैंने हंस कर उसका विश्वास जीतने की आखिरी कोशिश है. शायद बुड्ढा रोक ले.

'लेकिन कहा न मैंने, मेरे पास इतने ही हैं. उसने सचमुच जेब से दो सौ रुपये निकाल कर मेरे सामने रख दिये हैं.'

मैंने उसके हाथ से रुपये ले लिये हैं और उसे आश्वस्त करते हुए कहा है, 'आप मेरी राह देखना सर, मैं गयी और आयी. मैं आपके साथ ढेर सारी बातें करूंगी, हम एक साथ डिनर लेंगे और मैं आपको बस स्टैंड तक खुद छोड़ने आऊंगी. वेट फॉर मी सर, जस्ट हाफ एन ऑवर.'

और मैं कमरे से बाहर हो गयी हूं.

रांग नंबर :

मुझे पता है, रूबी अब कभी वापिस नहीं आयेगी. फोन भी करूंगा तो मेरा नंबर देखते ही डिस्कनेक्ट कर देगी.

जाते जाते उसने मुझसे पूछा कि क्या वह बोतल में बची हुई वोदका ले जा सकती है.

मैंने वोदका की बोतल और नमकीन का पैकेट खुद ही उसे थमा दिये थे.

✉ एच१/१०१, रिद्धि गार्डन,
फिल्म सिटी रोड, मालाड (पू.), मुंबई-४०० ०९७.

आमने / सामने

'रचने से बेहतर सुख और कुछ नहीं है'

✍ सूरज प्रकाश

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, बिजय, बिकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, रिव्रेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र और संजीव निगम से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है सूरज प्रकाश की आत्मरचना.)

बहुत सारे बिंब हैं. स्मृतियां हैं. दंश हैं. छोटी-छोटी खुशियां हैं. बहुत कुछ ऐसा भी है जो अब तक किसी से बांटा नहीं है. न आमने-सामने और न लेखन के ज़रिये ही. मुझे नहीं पता कि सब लिखने पढ़ने वालों के साथ ही ऐसा होता है कि लगातार लिखने के बावजूद बहुत कुछ ऐसा भी रह जाता है जो न कहा जाता है न लिखा ही जाता है.

एक बार वरिष्ठ कथाकार गोविंद मिश्र ने कहा था कि आम आदमी में और लेखक में यही फ़र्क होता है कि दोनों ही भरे हुए बादलों की तरह होते हैं. लेखक बरस कर खुद को हलका कर लेता है और आम आदमी बिना बरसे आगे गुज़र जाता है. इसी बात को आगे बढ़ाऊं तो लेखक भी खुद को पूरी तरह कहां खाली कर पाता है. हर पल कुछ न कुछ तो नया जुड़ता रहता है. अच्छा भी बुरा भी, जो कहे जाने लायक होते हुए भी कहे जाने से हमेशा रह जाता है. उसी की टीस हमेशा सालती रहती है. यही टीस बीच-बीच में जब ज्यादा घनी हो जाती है तो शब्द रूप में आकार ग्रहण करती है. टीस का यह खज़ाना न कभी खाली होता है न पूरी तरह से मुक्ति देता है. जिस दिन ये टीस नहीं रहेगी, लिखने-कहने के लिए ही कहां कुछ रह जायेगा.

मेरे पास भी तो ऐसा बहुत कुछ अनकहा है. पता नहीं कभी कह पाऊंगा या नहीं. कभी सोचा भी नहीं था लेखन से जुड़ूंगा. जिस किस्म के माहौल में रहा और जिस किस्म की परवरिश हिस्से में आयी, उसमें इतने खूबसूरत, भरे-भरे और बेहद विस्तृत संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी. कभी सोच भी नहीं सकता था, शब्दों का इतना खूबसूरत संसार मेरे हिस्से में भी आयेगा.

यहां मैं बचपन के अभावों, तकलीफ़ों और पढ़ाई को लेकर दूसरी दिक्कतों का बिल्कुल भी ज़िक्र किये बिना बचपन की एक ऐसी घटना शेयर करना चाहूंगा जिसने मेरे बाद के जीवन की दिशा ही बदल डाली.

तब उम्र तेरह चौदह साल की रही होगी. उन दिनों हम अपने पिताजी के पास गर्मियों की छुट्टियों में मसूरी गये हुए थे. उन दिनों उनकी पोस्टिंग वहीं थी. मैं अपने बड़े भाइयों और दोस्तों के साथ ज़िंदगी में पहली बार (और आखरी बार भी) अपने घर के पास वाले मैदान में क्रिकेट खेल रहा था. एक टूटा हुआ सा बैट था और हमारी खुद की बनायी हुई लकड़ी की गेंद थी. अचानक गेंद सीधे मेरे मुंह पर आ कर लगी और सामने का आधा दांत टूट गया. मैं रोता हुआ घर आ गया. दांत टूटने की पीड़ा तो दो एक घंटे में चली गयी होगी लेकिन जिस पीड़ा ने मेरा पीछा बहुत देर तक, पच्चीस तीस साल तक की उम्र तक नहीं छोड़ा, वह थी उस टूटे दांत की वज़ह से उस वक़्त रख दिये गये नाम से चिढ़ाये जाने की पीड़ा. मेरे भाई और सब दोस्त मुझे दांत टूटा बकरा कह कर चिढ़ाने लगे थे. मेरा चेहरा वैसा भी लंबोतरा है. मैं रोता, गुस्सा करता तो उन्हें और मज़ा आता. वे और चिढ़ाते. सामने भी और पीठ पीछे भी मेरे लिए सबके पास अब यही संबोधन था. कोई भी मेरी पीड़ा को समझने को तैयार नहीं था. नतीज़ा यह हुआ कि मैंने उनके साथ खेलना बंद कर दिया. मैं अकेला होता चला गया और अपने अकेलेपन की एक अलग ही दुनिया में विचरने लगा. इस टूटे दांत की वज़ह से मैं किसी से बात करने में भी शरमाता. हीनता की ग्रंथि इतनी अधिक घर कर गयी कि मुंह पर हाथ रख कर बात करता. कहीं किसी को मेरा टूटा दांत नज़र न आ जाये. कोई बड़ा आदमी मुझसे बात करता तो मैं बात भी न कर पाता. मैं खुद अपनी तरफ़ से पहल नहीं कर पाता. लड़कियों से बात करने लायक आत्मविश्वास तो मुझमें बहुत देर बाद तक नहीं आ पाया था. अभी भी शायद नहीं है. मन ही मन घुटता रहता. बेशक थोड़े बहुत दोस्त बाद में बने

लेकिन मेरा खोया आत्मविश्वास वापिस नहीं मिला. घर में कभी किसी को सूझा ही नहीं कि सौ पचास रुपये खर्च करके मेरे इस आधे टूटे दांत का कोई इलाज ही करा देते. वहां पहले से ही कई समस्याएं थीं. आर्थिक दबाव थे.

शायद ऐसी ही मनःस्थिति में सातवीं आठवीं में पहली बार तुकबंदी की होगी. कविता की कोई समझ तो थी नहीं. बेशक पढ़ने का शौक था और हम भाई लोग देहरादून की इकलौती लाइब्रेरी, खुशी राम पब्लिक लाइब्रेरी में पढ़ने के लिए जाते थे, लेकिन तब यह पढ़ना चंदामामा, राजाभैया या बाल भारती तक ही सीमित था. बहुत हुआ तो प्रेम चंद की या बाल कथाओं की कोई क़िताब ले ली. तो इसी तरह तुकबंदी करके अपने अकेलेपन को बांटता. पढ़ाई में हम पांचों भाई और हमारी इकलौती बहन औसत ही थे.

बचपन में हमारे एक चाचा नौकरी के सिलसिले में हमारे घर में ही रहने के लिए देहरादून आये. पिता जी तब छः महीने मसूरी और छः महीने टूर पर रहा करते. डेढ़ कमरे का मकान. आर्थिक दबाव. उसी घर में दादा, दादी, बुआ और दो चाचा तथा हम छः भाई बहनों का बोझ अकेले ढोती मां जो अपनी तकलीफ़ों को किसी से भी न कह पाने की पीड़ा को हम सबको पीट पीट कर गुस्से के रूप में हम पर उतारती. सारा बचपन ही मार और डांट खाते बीता. कुछ भी सहज नहीं, सुलभ नहीं. शायद यही वज़ह है कि अपने बच्चों पर मैंने आज तक हाथ भी नहीं उठाया है. हमें नियमित जेब खर्च नहीं मिलता था, इसी वज़ह से हम अपने छोटे-छोटे खर्च पूरे करने के लिए घर का सामान लाने में बेईमानी करते, सामान कम तुलवा कर लाते, ज्यादा दाम बताते या दूसरी ओछी हरकतें करके दो चार आने बचा लेते.

घर की यह हालत थी कि उस घर में लैट्रिन का दरवाज़ा टूट गया तो बरसों तक लगवाया नहीं जा सका. एक टाट का परदा लटकता रहा. घर में लाइट नहीं थी. एक ही लैंप होता और उसी के जरिये सारे काम निपटाये जाते. बाद में स्थानीय चुनावों में वोटों के चक्कर में एक उम्मीदवार ने हमारी गली में बिजली लगवायी तो शायद यह हम पर बहुत बड़ी मेहरबानी थी कि वह खंबा हमारी ही दीवार पर लगवाया गया और हमारा घर रौशन हुआ. दसवीं और बारहवीं की पढ़ाई उसी खंबे के बल्ब तले पूरी की गयी. इससे पहले पड़ोस से एक बल्ब के लायक बिजली लेते और मुंह मांगे दाम देते, उनकी धौंस अलग से सहते.

उस डेढ़ कमरे के घर का यह आलम था कि बरसात में सारा घर चूता और कोई भी बरतन ऐसा न बचता जो टपकते पानी के नीचे न रखा हो. सारी-सारी रात टपकते पानी से बचते-बचाते बीतती.

आस-पास का माहौल भी बहुत अच्छा नहीं था. मछली बाजार में घर, आस-पास कच्ची शराब बिकती, जुआ चलता और सट्टे के लेनदेन होते. आये दिन चाकू चलते. कोई दिन ऐसा न होता जब देर रात तक वहां कोई शराबी आस पास गाली गलौज न कर रहा होता या झगड़ा न कर रहा होता. आस पास के मीट मच्छी वाले रात बारह बजे आल इंडिया रेडियो का उर्दू फर्माइश का प्रोग्राम पूरा होने पर ही अपने रेडियो बंद करते. रेडियो का वाल्यूम इतना ऊंचा होता कि पूरे मोहल्ले में दो सौ गज़ दूर तक किसी को अपने घर में रेडियो बजाने की ज़रूरत न पड़ती. आप बजा ही नहीं सकते थे. हमारे आस-पास जिन लोगों के घर थे, उनमें कुंजड़े, कबाड़ी, आलू बेचने वाले और दूसरे छोटे-मोटे धंधे करने वाले लोग थे जिनमें आपस में कम से कम दिन में दो के हिसाब से झगड़े तो होते ही. दूसरों से न सही, आपस में ही लड़ मरने वाले परिवार भी हमारे आस-पास बहुतायत में थे. गरीब लोगों का इलाका. वे खुद न लड़ते, उनकी गरीबी उन्हें लड़वाती. उनकी बीवियां लड़वाती. बच्चे लड़वाते. सारे लड़के हरामी और आवारागर्द. ऐसे घिनौने माहौल में हमने पूरे १४ बरस गुज़ारे थे. तो ऐसे माहौल में अच्छे संस्कारों की उम्मीद ही कैसे होती. लेखन के बारे में तो सोचा ही नहीं जा सकता था. हम एक तरफ़ राजा भइया और चंदा मामा और प्रेम चंद पढ़ते तो दूसरी ओर आगरा से छपने वाली गंदी पत्रिकाएं आजाद लोक और मस्त राम की किताबें पढ़ते.

ऐसे में चाचा का पढ़ाने का आतंकित करने वाला तरीका. वे ऑफिस से जल्दी आकर देखते, कहीं हम आवारागर्दी तो नहीं कर रहे. करते भी थे लेकिन डरते-डरते. खूब पीटते वे. इसका और शायद आस पास के माहौल का भी नतीज़ा रहा कि हममें से किसी भी भाई को आज तक न पतंग उड़ाना आता है न कंचे खेलना. हर खेल में हम डरते-डरते हिस्सा लेते और कभी कोई तीर नहीं मार सके. अक्सर पिट कर आ जाते. इसी वज़ह से हम सब भाई दब्बू निकले, औसत ज़िंदगी जीते रहे. पतंग उड़ानी मैंने कुछ बरस पहले अहमदाबाद में उत्तरायण के मौके पर सीखी. और कोई खेल आज तक आता नहीं. न गाना और न ही नाचना या और तरह की धींगा मस्ती करना.

जब मैं ग्यारहवीं में था और दोनों बड़े भाई बारहवीं में तो हम छः के छः भाई बहन अपनी-अपनी कक्षा में फेल हो गये. हम तीन बड़े भाइयों की पढ़ाई छूट गयी. सबसे बड़े भाई, जैसी भी मिली, छोटी मोटी नौकरी में ठेल दिये गये. मेरी अपनी उम्र थी कुल जमा सत्रह बरस. तभी हर तरह के धंधे करने पर विवश होना पड़ा. कभी लॉटरी के टिकट बेचे तो तो कभी आवाज लगा कर कच्छे बनियान और रूमाल भी बेचे. ट्यूशनें पढ़ायीं, सेल्समैनी की. ये सब टटपूंजिये धंधे किये. शर्म भी आती. आस पास की परिचित लड़कियां क्या कहेंगी, लेकिन कुछ तो करना ही था. हां, ये सब करते समय यह हमेशा दिमाग में रहा कि सिर्फ़ यही नहीं करते रहना है. और भी कुछ करना है. बेशक पढ़ाई नहीं थी लेकिन भीतर एक उम्मीद सी टिमटिमाती थी कि चीज़ें यूं ही नहीं रहेंगी.

संयोग ऐसा बना कि एक फटीचर नौकरी के साथ-साथ प्राइवेट तौर पर इंटर की परीक्षा देने का मौका मिल गया. इंटर के बाद मॉर्निंग कॉलेज से बी.ए. करना चाहता था. लेकिन फीस वगैरह के लिए चार सौ अस्सी रुपये नहीं थे, सो एडमिशन नहीं करवा पाया. एक सेमेस्टर बेकार गया. अगले सेमेस्टर में भी यही हाल था. नौकरी करने के बावजूद पैसे नहीं थे. वेतन था शायद १२० रुपये महीना. एक ज़गह दिहाड़ी के हिसाब से टाइपिंग का काम करता था और उसमें तीन महीने बाद एक दिन का ब्रेक मिला करता था. उन्हीं दिनों पिताजी सरकारी कर्ज से मकान बनवा रहे थे. घर में बहुत तंगी चल रही थी और जितने पैसे उनके हाथ में थे, उससे मकांन पूरा नहीं हो सकता था. वे सारे दोस्तों के कर्जदार हो चुके थे. बेशक अब तक दोनों बड़े भाई पढ़ाई छोड़ कर नौकरी करने लगे थे लेकिन वे बीच वाले चाचा के पास दूसरे शहर में थे और ज्यादा मदद नहीं कर पा रहे थे.

आज भी मुझे वह तारीख अच्छी तरह याद है. २५ नवंबर १९७१. दूसरे सेमेस्टर में एडमिशन की आखिरी तारीख़ थी और घर में सिर्फ ५०० रुपये थे जिससे उसी दिन सीमेंट लाया जाना था. पिताजी ने मेरा उदास चेहरा देखा और भरे मन से वे सारे रुपये मुझे थमा दिये - 'जा एडमिशन ले ले. घर बनता रहेगा.'

यह मेरे प्रति उनका पहला त्याग था. मैं आज तक उनकी वे नम आंखें नहीं भूल पाया हूं. भूल सकता भी नहीं. भूलना भी नहीं चाहिए.

और इस तरह मेरा बी.ए. पूरा हुआ था. तब तक मेरी भी पक्की नौकरी लग चुकी थी. नक्शा नवीस की. दो एक कविताएं भी स्थानीय अख़बारों में छप गयी थीं लेकिन तब तक न किसी लेखक से परिचय था न कुछ ढंग की चीज़ें ही सिलसिलेवार पढ़ने का अवसर मिल पाया था. सुबह छः बजे से नौ बजे तक कॉलेज, दिन में नौकरी और शाम को एकाध ट्यूशन.

बी. ए. करते ही मुझे घर से तीन हज़ार किमी दूर हैदराबाद में अनुवादक की नौकरी मिली. जिस वेतन मान में पिताजी नौकरी के २५ साल बाद पहुंचे थे, मैं उससे अपने कैरियर की शुरूआत कर रहा था. हैदराबाद में ही एम.ए. के लिए ईवनिंग कॉलेज में दाखिला ले लिया. बाइस बरस की उम्र. पहली ही बार में घर से इतनी दूर. रहने खाने की तकलीफ़ें भी. एक बार फिर से व्यस्त दिनचर्या.

एक अच्छी मित्र बनी. वह डे कॉलेज में थी और मैं ईवनिंग में. अक्सर फोन करती. उसे फोन करने के लिए अपनी सहेली के घर जाना पड़ता. वहां से वे एक ऐसे तबेले में जा कर फोन करतीं जहां उस वक़्त कोई न होता. इसमें उन्हें दो तीन घंटे और ढेर से रुपये लगते लेकिन उन्हें इसमें सुख मिलता और मुझे अच्छा लगता कि कोई है यहां. लेकिन बाद में उसकी शादी हो गयी, टूटी और वह अपने पैरों पर खड़ी हो कर फिर से जीवन संघर्षों से दो चार होती रही. ये अलग विषय है.

हैदराबाद में मेरे रूम पार्टनर मेरे ही संस्थान के थे और हद दर्जे के बिगड़े हुए थे. रात-रात भर हमारे घर में ताशबाजी चलती. मुझे भी घसीट लिया जाता. मैं कॉलेज से थका हुआ आता, कुछ पढ़ना चाहता लेकिन घर पर खेल जमा होता. वे मेरा मज़ाक उड़ाते. लेकिन मैं अपने दब्बू स्वभाव के चलते उनसे लड़ भी न पाता. वे दोनों बाहर रंडीबाजी करते, आवारागर्दी करते, लेकिन मैं किसी तरह खुद पर काबू पाये रहता. कई बार अलग रहने की सोची भी, लेकिन नहीं हो पाया.

एम.ए. फाइनल के पेपर चल रहे थे. अगले दिन भाषा विज्ञान का पेपर था. दोनों पार्टनर अचानक एक सड़क छाप लड़की को ले कर आ गये. लड़की सुबह से उनके साथ थी और वे सारा दिन उसके साथ आवारागर्दी करते रहे थे. जब तक खाना पीना चलता रहा, मैं उनका साथ देता रहा, लेकिन संकट बाद में शुरू हुआ. मैंने लड़की शेयर करने का उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया. हालांकि मेरा कमरा अलग था और उन दोनों का कमरा अलग, बीच में दरवाज़ा, वैसे उसे बंद किया जा सकता था, लेकिन उस हाल में सुबह पेपर देने के लिए पढ़ पाना मेरे लिए बहुत मुश्किल काम था. वैसे भी अपनी ज़िंदगी में सैक्स की शुरूआत इतने बाजारू ढंग से करने के बारे में मैं सोच भी नहीं सकता था. हालांकि इस वज़ह से मुझे उन दोनों से नामर्द की गाली खानी पड़ी, जिसे मैं झेल गया.

मैं रात भर लैंप की रोशनी में छत पर पढ़ता रहा. रात में ही किसी वक़्त लड़की को बाहर निकाल दिया गया था. रिक्शे के पैसों के लिए उसकी दबी ज़ुबान में झिक-झिक से मेरी नींद खुली. मैंने छत से देखा कि वह लड़की आधे-अधूरे कपड़ों में रिक्शे के पैसों के लिए गिड़गिड़ा रही थी और सतीश आनंद उसे धकिया रहा था.

इस घटना ने मुझे कई बरस तक व्यथित किये रखा. आखिर इस घटना के पंद्रह सोलह साल बाद १९९२ में मैंने इस पर अपनी विवादास्पद कहानी 'उर्फ़ चंदरकला' लिखी और हिंदी के तमाम लेखकों की नाराज़गी मोल ली.

एम. ए. में विश्वविद्यालय में मेरा दूसरा स्थान रहा. मैं स्थानीय होता तो पहला रहता.

उस वक़्त तक और बाद में भी १९७७ में देहरादून लौटा तब भी, घर लौट कर भी छटपटाहट, बेचैनी और कुछ न कर पाने की जद्दोजहद मेरा पीछा न छोड़ती. अकेलापन फिर साथ में.

इस बीच दिल्ली में तीन महीने की एक ट्रेनिंग के लिए जाना हुआ और वहां एक लड़की से परिचय हुआ. वह उसी कार्यालय में काम करती थी जहां ट्रेनिंग थी. हम दोनों ने तीन महीने खूब अच्छे से गुज़ारे और खूब बदनामी मोल ली.

उसी के कहने पर मैंने उस कार्यालय में रिक्तियों के लिए आवेदन किया और चयन हो गया. लेकिन जब मैं वहां उसके

प्यार के चक्कर में घर बार छोड़ कर दिल्ली आ गया तो वह बात करने को ही राज़ी न हो. मेरा दिल टूट गया, एक तो मैं एक बार फिर घर छोड़ कर चला आया था और यहां अकेला गया था. न खुदा ही मिला न विसाले सनम.

दरअसल हुआ यह था कि जब मेरा चयन हुआ तो पिता-जी को तभी प्रमोशन मिला और उन्हें शिलांग का स्थानांतरण मिला. हम दोनों में से कोई एक ही जा सकता था. उनकी इच्छा थी कि वे ये प्रमोशन ले लें और बाद में वापिस आ जायेंगे तब मैं बाहर निकलने के बारे में सोचूं. लेकिन हम तो प्रेम में पागल थे सो एक न सुनी. पिताजी ने एक बार फिर मेरे पक्ष में त्याग किया. उन्हें अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण पद खोना पड़ा और उनकी पेंशन आदि पर काफी फ़र्क पड़ा. रुतबे पर तो पड़ा ही.

और मैं दिल्ली आ गया. दिल्ली जाकर नयी नौकरी करने के दौरान बेशक लेखकों के बीच उठना बैठना होता रहा लेकिन कुछ भी लिखा नहीं जाता था. बहुत घुटन होती थी लेकिन शब्द नहीं सूझते थे. इस बीच देहरादून, हैदराबाद और दिल्ली में हुए दो तीन प्रेम प्रसंग धराशायी हो चुके थे. हर बार की तरह मैं अकेला ही रहा.

इस बीच एक और नौकरी बदली. हमेशा मन पर दबाव रहता. ज़िंदगी निरर्थक सी लगने लगती. समझ में नहीं आता था कि क्या और कैसे किया जाये. ढेरों अनुभव थे लेकिन उन्हें सिलसिलेवार कह पाना या लिख पाना ही नहीं होता था. तभी अपनी पुरानी कलीग एक और अच्छी लड़की से मित्रता हुई. उसका बहुत स्नेह मिला. ज़िंदगी में रस आने लगा. नौकरी अलग-अलग ज़गह होने के कारण हमारा रोज़ाना मिलना संभव नहीं हो पाता था. तभी एक ज़गह तमिल भाषा के छः महीने के कोर्स का विज्ञापन देखा. हफ्ते में दो बार शाम को. आइडिया अच्छा लगा. दोनों ने एडमिशन ले लिया. अगले छः महीने तक हफ्ते में दो बार पूरी शाम एक साथ गुज़ारने का सिलसिला बन गया. दिल्ली प्रवास के दौरान का वह वक़्त बहुत ही अच्छा गुज़रा. ज़िंदगी के नये मायने मिले. तब तक पिता जी भी तबादला लेकर दिल्ली आ गये थे. भाई बहन भी. हालांकि इस बीच दो तीन नौकरियां बदल चुका था और अब तक ठीक-ठाक नौकरी कर रहा था लेकिन फिर भी कहीं छटपटाहट थी जो हर वक़्त बैचैन किये रहती थी. लिखने की शुरुआत अब तक नहीं हो पायी थी. फालतू के दुनियावी धंधों में दिन गुज़र रहे थे. घर वालों की तरफ़ से शादी के दबाव पड़ने शुरू हो गये थे. उम्र २८ की हो चली थी. हम दोनों शादी करना तो चाहते थे लेकिन घर वालों की रज़ामंदी से. उसके घर वाले मुझे जानते ही थे और वह भी हमारे घर कई बार आ चुकी थी. मेरे परिवार को कोई खास एतराज़ नहीं था. मेरे माता पिता वगैरह जब लड़की वालों से मिलने गये तो लड़की की मां बिदक गयी. ज़हर खाने की धमकी दे डाली. पूरा मामला ही खटाई में पड़ गया.

इस बीच मुंबई से रिज़र्व बैंक से इस नौकरी का ऑफर आ चुका था. हमने तय किया कि मुंबई जाते ही और घर का इंतजाम करते ही मैं आऊंगा और हम कोर्ट मैरिज कर लेंगे. एक बार फिर मैंने परिवार और पिताजी को धोखा दिया और उनके दिल्ली आने के कुछ ही दिन बाद बंबई की राह पकड़ी. वे लोग मेरे ही कारण दिल्ली आये थे.

लेकिन जब उसके परिवार को मेरे शहर छोड़ कर जाने का पता चला तो उन्होंने ज़रा भी देर नहीं की और उसका विवाह अपनी ही बिरादरी में कर दिया. एक और प्रेम अध्याय समाप्त हुआ.

बंबई के शुरू के दिन बेहद तकलीफ़ भरे गुज़रे. रहने का जो ठिकाना मिला उन्हीं चाचा के घर जो बीस बरस पहले कई साल तक हमारे डेढ़ कमरे के घर में हमारे साथ रह चुके थे. चाचा के घर रहना बेहद तकलीफ़ भरा रहा. चाची बिना वज़ह तनाव में खुद भी रहती और सबको रखती. हालांकि सिर्फ़ रात का खाना ही खाता था, वह भी पेट भर नसीब न होता. जब वे लोग मेरे भरोसे घर छोड़ कर छुट्टियों में महीने भर के लिए बाहर गये तो चाची टीवी और फ्रिज तक को ताला लगा कर गयी थी. यह बहुत बड़ा अपमान लगा मुझे. बेशक चाचा को भी बुरा लगा लेकिन उनका बस चलता तो ये नौबत ही क्यों आती. उस दिन पहली बार बैठ कर मैंने एक बार में शराब पी और वह शायद मेरी ज़िंदगी का सबसे उदास दिन था. सारे रिश्ते नातों से मेरा मोह भंग हो गया था. लेकिन यही तो जीवन है.

जिस दिन चाचा चाची वापिस लौटे, उनके पंहुचने से आधा घंटे पहले ही उनका घर छोड़ दिया और पूरा दिन सामान लिये-लिये ठिकाने की तलाश में भटकता रहा. शाम के वक़्त अपने अधिकारी के यहां दो दिन के लिए शरण मांगी.

बड़ी मुश्किल से एक गेस्ट हाउस में रहने का इंतजाम हो पाया था. वहां अकेलापन बहुत काटता. रूम पार्टनर एक दूसरे से बात हीं नहीं करते थे. कहीं कोई कुछ मांग न ले. कोई यार दोस्त था नहीं और हर तरह से मैं अकेला था.

घर को लेकर ये सारे के सारे बिंब मेरी अलग-अलग कहानियों में आये हैं और अभी भी बहुत कुछ ऐसा है जो घर के जरिये मुझे कहना है. हालांकि मेरी पिछली कई रचनाओं और उपन्यास में भी घर बहुत शिद्दत से उभर कर आया है. कई कहानियों के नाम भी घर से जुड़े हुए हैं और थीम भी घर से मोह ही है. 'घर बेघर', 'छूटे हुए घर', 'खो जाते हैं घर', 'देस बिराना', 'मर्द नहीं रोते', 'सही पते पर', 'फैसले', 'छोटे नवाब, बड़े नवाब' और मेरी लंबी कहानी 'देश, आजादी की पचासवीं वर्षगांठ तथा 'एक मामूली सी प्रेम कहानी,' इन सबमें घर ही है जो बार बार हॉन्ट करता है और कुछ नये अर्थ दे जाता है.

खैर, तो बात हो रही थी. बंबई के शुरुआती दिनों की. ऑफिस का माहौल बेहद तनाव भरा था और वहां गुटबाजी थी.

नये आदमी को वैसे भी एडजस्ट करने में कुछ समय तो लगता ही है. कई बार सब कुछ छोड़-छाड़ कर वापिस भाग जाने का दिल करता. एकाध बार इस्तीफा भी लिख कर दिया. यह नया शहर जहां सिर्फ़ अकेलापन और अकेलापन था, मुझे रास नहीं आया था. आखिर आप कितने दिन और कब तक मैरीन ड्राइव की मुंडेर पर बैठकर वक़्त गुज़ार सकते हैं. वह भी अकेले. बाद में धीरे-धीरे शहर के कुछ लिखने पढ़ने वालों से थोड़ा बहुत परिचय हुआ, कुछ यार दोस्त बने तो हम लोग खाली वक़्त में मुंबई युनिवर्सिटी के लॉन में बैठने लगे. वहीं मधु से परिचय हुआ, आगे बढ़ा और इस ज़िंदगी के अकेलेपन का हमेशा के लिए खात्मा हुआ. बंबई आने के ढाई साल बाद विवाह. प्रेम विवाह. हमने १९८३ में एरेंज्ड लव मैरिज की. अब तक अच्छी तरह से निभ रही है.

शादी के बाद ही जाना कि शादी के दिन से जो आपकी आज़ादी छिनती है, पूरी ज़िंदगी वापिस नहीं मिलती. बेशक आप परिवार से दूर अकेले रह भी रहे हों, आप कभी अकेले नहीं होते. शादी शुदा ही होते हैं. हमेशा के लिए.

इस बीच भी लिखने की कई बार कोशिश की लेकिन बात नहीं बन पाती थी. लिखता और फाड़ देता. कोई गाइड करने वाला था नहीं. एक बार एक रचना लिखी और दिल्ली में धीरेंद्र अस्थाना, बलराम और सुरेश उनियाल को सुनायी. ये लोग मुझसे दस पंद्रह बरस से परिचित थे और इतने ही अरसे से लिखते-छपते आ रहे थे. रचना सुन लेने के बाद किसी ने एक शब्द तक नहीं कहा कि रचना भी है या नहीं. अपनी पहली रचना पर उनके इस व्यवहार से बहुत तकलीफ़ हुई थी. तभी बहुत मशक्कत करके एक और कहानी लिखी थी और जब सुरेश उनियाल मुंबई आये तो उन्हें सुनायी. फिर वही मुंह में दही रखने वाला मौन. मार्गदर्शन का एक शब्द भी नहीं. कहानी दिल्ली में अपने परिचित कथाकार सुरेंद्र अरोड़ा को दिखायी. अगले दिन उन्होंने कहा कि मैंने रात को कहानी पढ़ी तो थी लेकिन याद ही नहीं आ रही है कि क्या कहानी थी. इसके अलावा और कोई शब्द नहीं. एक बार किसी गोष्ठी में वरिष्ठ कथाकार जगदंबा प्रसाद दीक्षित से मुलाकात हुई. उन्हें खूब पढ़ चुका था और वे भी मुझे नाम-चेहरे से जानते ही थे. उनसे मैंने पूछा था लिखना चाहता हूं, लेकिन बात नहीं बनती, क्या करूं, कैसे लिखूं. उनकी भी प्रतिक्रिया ठंडी ही थी और मैं एक बार फिर खाली हाथ रह गया था.

१९८७ तक आते-आते यानी ३५ साल की उम्र तक प्रकाशित रचनाओं के नाम पर मेरी कुल जमा पूंजी सारिका में दो-तीन लघुकथाएं और एक-आध अनुवाद ही था. यहां तक आते-आते लिखने की चाह और न लिख पाने की तकलीफ़ बहुत सालने लगी थी. तब तक एक बेटे का पिता बन चुका था और घर में भी कोई तकलीफ़ नहीं थी. भटकन थी कि कहीं चैन नहीं

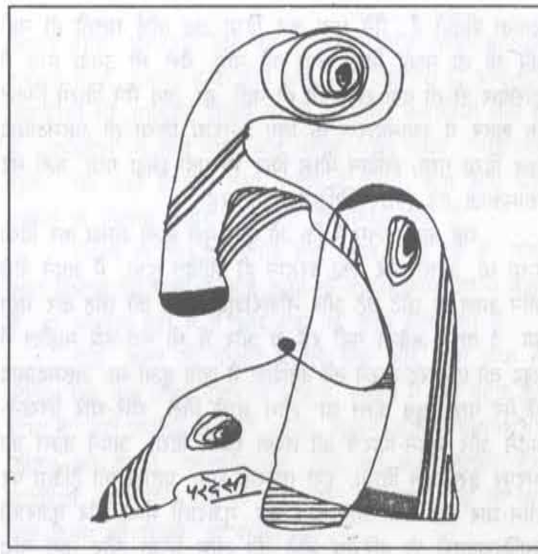

लेने देती थी. तभी किसी ने सुझाया १० दिन के लिए विपश्यना शिविर में हो आओ. चित्त को शांति भी मिलेगी और राह भी सूझेगी. ईगतपुरी में विपश्यना शिविर किया तो मानसिक द्वंद्व कुछ कम हुआ और चीज़ों की गहराई से देखने, समझने लायक बल मिला.

३६ बरस की उम्र में पहली कहानी नवभारत टाइम्स में छपी और दूसरी कहानी वरिष्ठ रचनाकार सोहन शर्मा ने अपने कथा संकलन में शामिल की. इस वक़्त तक मेरे सभी दोस्तों की कई-कई किताबें आ चुकी थीं. खैर, देर से ही सही, शुरूआत तो हुई. हिम्मत बढ़ी और अपने जीवन की महत्वपूर्ण कहानी 'अधूरी तस्वीर' (१९८८) लिखी जो धर्मयुग में छपी और बाद में कई भाषाओं में अनूदित हुई. तब तक सिलसिला चल निकला था और धीरे-धीरे ही सही लिखना आने लगा था. डेढ़ दो साल की अवधि में तीन-चार कहानियों के ड्राफ्ट लिखे. हालांकि कोई भी कहानी मुक्कमल तौर पर अच्छी नहीं बन पायी थी लेकिन बात कहने का शऊर आने लगा था. लिखने की मेज पर बैठने का संस्कार मिल रहा था और तनाव कम होने लगे थे.

१९८८ के मध्य के आते-आते ऑफिस में माहौल फिर से मेरे खिलाफ़ होने लगा था. पिछले दो तीन बरसों में जो चीज़ें अपनी तरफ की थीं फिर से खिलाफ़ होने लगी थीं. मेरे सभी कामों में नुक्स निकाले जाने लगे और सताया जाने लगा. हालत यहां तक पंहुच गयी कि मुझे सज़ा के तौर पर १९८९ में जनवरी में १० दिन के नोटिस पर मद्रास स्थानांतरित कर दिया गया. पहले से ही तैयार था इसके लिए. लेकिन पूरे विभाग को जैसे सांप सूंघ गया हो. सब साथियों ने मुझसे बात तक करना बंद कर दिया कि कहीं उन्हें भी ऐसी ही सज़ा न मिल जाये. मुझसे मेरे विभागाध्यक्ष ने कहा कि अगर माफ़ी मांग लो तो ट्रांसफर

रुकवा सकते हैं. मैंने मना कर दिया जब कोई गलती ही नहीं की थी तो माफ़ी किस बात की मांगूं. वैसे भी उनके हाथ में ट्रांसफर से तो बड़ी सज़ा थी ही नहीं हां, जब मैंने किसी निकट के शहर में स्थानांतरण के लिए अनुरोध किया तो अहमदाबाद कर दिया गया, लेकिन पीछा फिर भी नहीं छोड़ा गया. वहीं मेरे कामकाज को लेकर चिट्ठियां जाती रहीं.

यह बात अलग है कि जो कुछ मुझे सज़ा समझ कर दिया गया था, अंततः मेरे लिए वरदान ही साबित हुआ. मैं अपने पीछे तीन साल के छोटे बेटे और नौकरीशुदा पत्नी को छोड़ कर गया था. वे कभी अकेले नहीं रहे थे और मैं भी नये-नये माहौल में खुद को एडजस्ट करने की कोशिश में लगा हुआ था. अहमदाबाद में मेरे पास खूब वक़्त था. लोग अच्छे मिले. धीरे-धीरे लिखने-पढ़ने और घूमने-फिरने की तरफ ध्यान दिया. अपने वक़्त का भरपूर इस्तेमाल किया. पूरा गुजरात घूमा, पहाड़ों की ट्रैकिंग पर तीन-चार बार गया और खूब पढ़ा. गुजराती भाषा और गुजराती साहित्यकारों से परिचय होने का लाभ लिया और वहां पांच गुजराती किताबों के अनुवाद किये.

अहमदाबाद चले आने से मेरा बेटा बंटी अक्सर बीमार हो जाता जिसे लेकर मधु परेशान हो जाती. कभी उसे लिये-लिये अहमदाबाद आती तो कभी मुझे भाग कर मुंबई आना पड़ता. लेकिन मधु ने लगातार हिम्मत बनाये रखी और दोनों मोर्चे संभाले रही. इस बीच कहानियां छपने लगी थीं और नोटिस भी लिया जाने लगा था. पाठकों, साथी रचनाकारों के पत्र आने लगे थे जिससे हिम्मत और बढ़ती.

इस बीच जूनागढ़ में कई बरसों से अध्यापन कर रहे शैलेश पंडित से परिचय हो चुका था. वे अक्सर आ जाते और हम दोनों खूब धमाल मचाते. दारू के जुगाड़ में भटकते रहते. अहमदाबाद में दारू कैसे मिलती है इस पर मैंने एक लेख भी 'हंस' में लिखा था. शैलेश पंडित ने अब लिखना छोड़ दिया है. दूरदर्शन की एक टुच्ची-सी अफसरी उनके भीतर के बेहतरीन लेखक को हमेशा के लिए खा गयी और मैंने एक बेहतरीन दोस्त खोया. हालांकि शैलेश की आखिरी कहानी पढ़े हुए मुझे कई बरस हो गये हैं, फिर भी उसके फिर से सक्रिय होने का मुझे हमेशा इंतज़ार रहेगा.

गोविंद मिश्र भी उन दिनों वहीं थे, अक्सर मुलाकात होती. इस बीच श्रीप्रकाश मिश्र भी वहीं आ गये थे. हम खूब हंगामें करते. रात-रात भर गोष्ठियां करते. लंबी ड्राइव पर निकल जाते. अहमदाबाद में जो भी रचनाकार आता, उसको लेकर एक गोष्ठी तो मेरे घर पर होती ही. कई अच्छे लेखकों से वहीं परिचय हुआ. राजेंद्र यादव, गिरिराज किशोर, गोविंद मिश्र, राजी सेठ, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंगलेश डबराल, पंकज बिष्ट, शैलेश मटियानी, निदा फ़ाजली, विभूति नारायण राय सरीखे कई वरिष्ठ रचनाकार घर आये. ऐसी गोष्ठियों में आचमन का जुगाड़ हो जाये तो और क्या कहने. अहमदाबाद रहते हुए ही मेरा पहला कहानी संग्रह 'अधूरी तस्वीर' आया. उन्हीं दिनों गुजरात हिंदी अकादमी का गठन हुआ था सो मेरी क़िताब को पहला पुरस्कार दे दिया गया. उस पुरस्कार को लेना ही अपने अपने आप मे एक दुखद प्रसंग है. इसलिए उसका जिक्र नहीं. एक लिहाज़ से अहमदाबाद ने मुझे बहुत कुछ सिखाया. इस दौरान खूब पढ़ा, घूमा, लिखा, यारबाशी की, अच्छा संगीत सुना, मौन का सही अर्थ समझा और कई-कई बार पूरा दिन मौन रह कर गुज़ारा. खूब दारू पी लेकिन चारित्रिक आवारागर्दी फिर भी नहीं की.

अहमदाबाद में ६ साल गुज़ारने के बाद जब १९९५ में मुंबई लौटा तो लगभग १५ कहानियों की पूंजी, बीस के करीब ही व्यंग्य रचनाएं, 'एनिमल फार्म' का अनुवाद, एक उपन्यास का ड्राफ्ट और सैकड़ों दोस्त ले कर आया था. ये ही मेरी पूंजी थी जो मेरे गुजरात प्रवास ने मुझे दी थी. मैं पहले की तुलना में मैच्योर और समृद्ध हो कर लौटा था. और वापिस आ कर भी मैं चैन से कहां बैठ हूं. कितना तो काम किया है. दो उपन्यास, एक और कहानी संग्रह, गुजराती तथा अंग्रेजी से अनूदित पुस्तकें और महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी का पुरस्कार. लगातार काम करता ही रहा हूं और अब भटकन भी इतनी नहीं रही है.

शायद उम्र का तकाज़ा हो लेकिन एक बात है मन के कई कोने अभी भी खाली हैं. अकेलापन अभी भी है और दोस्तों के नाम पर शायद अभी भी एक-आध ही.

मन में संतोष तो होता ही है कि कितना कुछ मिला है. कभी सोच भी नहीं सकता था. कई अच्छी कहानियां और महत्वाकांक्षी उपन्यास 'देस बिराना' जो दो साल पहले छपा. इन दिनों चार्ली चैप्लिन की आत्मकथा का अनुवाद कर रहा हूं. महत्वपूर्ण काम है.

दो उपन्यास अगर ज्यादा नहीं तो कम नहीं हैं. ये कम भी हों तो उन सैकड़ों हजारों दोस्तों का प्यार तो है ही जो हर कहानी के बाद मुझे और समृद्ध कर जाता है. लेखन का एक मतलब यह भी तो होता है कि हमने कुल मिला कर कितने दोस्त बनाये, जो हमें जानते नहीं, लेकिन फिर भी हमारी अगली कहानी का बेसब्री से इंतज़ार करते हों.

अलग-अलग वक़्त पर अलग कहानियां धूम मचाती रही हैं. १९८९ में 'हंस' में 'यह जादू नहीं टूटना चाहिए' अब भी १५ बरस बाद भी पढ़ी और पसंद की जाती है. कई पाठक मुझे अभी भी उसी कहानी से जानते हैं, इस कहानी ने हिंदी और गुजराती में एक तरह से धूम मचा दी थी. फिर १९९१ में 'वर्तमान साहित्य' में छपी 'उर्फ़ चंदरकला' ने जो कहर ढाया वह अलग ही किस्सा है. तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं, 'वर्तमान साहित्य' के अंकों में बरस भर तक प्रतिक्रियाएं और कई सदस्यों का अपना वार्षिक चंदा वापिस मांग लेना, बिहार से तीखी प्रतिक्रियाएं, संपादकीय और सार्वजनिक सभाएं, गोष्ठियां कितना कुछ हुआ उसके साथ.

फिर उसके बाद भी कई कहानियां अलग-अलग पाठकों का ध्यान खींचती रही हैं. कहानियां के नाट्य रूपांतरण, मंचन और दूरदर्शन पर प्रदर्शन.

लेखन भी अजीब तरह का गोरखधंधा है. हर कहानी लिख लेने के बाद हम पूरी तरह से खाली हो जाते हैं. लगता है जो कुछ कहना था, इस कहानी के माध्यम से कहा जा चुका है. अब कुछ भी बाकी नहीं रह गया लेकिन जहां नयी कहानी के बीज पड़ने, अंकुरित होने शुरू होते हैं तो एक बार नयी दुनिया सामने झिलमिलाने लगती है. नये इंद्रधनुष बनने लगते हैं और आकार लेने लगती है एक और रचना. पहले से भी खूबसूरत रचना.

रचने से बेहतर सुख और कुछ नहीं है. हम कई कई दिन तक उसी के नशे में होते हैं. उसी को जीते, ओढ़ते-बिछाते और जीते हैं. कई बार डर लगता है कि अगर लेखन न होता तो क्या होता या जिन लोगों के पास लिख कर अपने आपको अभिव्यक्त करने का माध्यम नहीं होता तो वे कैसे जीते हैं. ख़ैर, लेखन ने जीने का माध्यम, पहचान, सम्मान दिया है.

बेशक लिखते हुए पंद्रह बरस हो गये हैं और काफी काम भी किया है लेकिन अभी भी है जो इन सब लिखे हुए शब्दों से बेहतर होगा. मुझे उसी दिन का इंतज़ार है और अपने आप पर भरोसा भी है. चाहता हूं दो तीन और अच्छे उपन्यास हों और लंबी कहानियां भी. हालांकि पिछले बरसों की सारी कहानियां लंबी ही हैं. 'कथादेश' में छपी 'बाबू भाई पंड्या', 'घर बेघर', 'मर्द नहीं रोते', 'खो जाते हैं घर' तथा वागर्थ में आयी 'क्या आप ग्रेसी राफेल से मिलना चाहेंगे' ये सारी कहानियां लंबी हैं.

पिछले दो तीन बरस मेरे लिए बहुत अच्छे रहे हैं. पांच-सात किताबें आ चुकी हैं और अभी तो काफी काम करना बाकी है. दो अनुवाद प्रेस में हैं और एक पर काम चल रहा है.

देखें, वक़्त की पोटली में मेरे लिए और क्या क्या है. लेकिन एक बात ज़रूर दोहराना चाहूंगा, लेखन ने मुझे बहुत कुछ दिया है. मेरी उम्मीदों से कहीं ज्यादा. सुकून, हज़ारों पाठक और जीवन को देखने, परखने और जीने का एक सुलझा हुआ नज़रिया. यही मेरी पूंजी है. इस पूंजी के सहारे एक तो क्या दस जनम भी गुज़ारे जा सकते हैं.

आमीन !

एच १/१०१, रिद्धि गार्डन, फिल्म सिटी रोड, मालाड (पू.), मुंबई-४०० ०९७.

दो लघुकथाएं

असभ्य

हसन जमाल

जिस जगह वे बैठे हुए थे, वह धूल से अटी थी. कबूतरों की बीटें, तिनके, घास-फूस, रद्दी काग़ज़ के टुकड़े, थूक, बलगम, फ़र्श पर ज़ख्मी कुत्ते के खूनी पंजों के निशान, कहीं-कहीं मल की जमती हुई पपड़ी जिन पर मक्खियां भिनभिनाती हुई लेकिन वे सब इस सबसे बेख़बर अपने हाल में मस्त थे.

दिन भर में कई लोग वहां आते. चाय पीते, अख़बार पढ़ते, गपशप करते और कुछ शराब से भी शग़ल कर लिया करते. शाम को क्लब के कमरे में जहां से चमगादड़ों की बदबू निरंतर आया करती, कुछ लोग कैरम व ताश वग़ैरह खेलने के लिए आते. अहाते की साफ़-सफ़ाई के लिए एक कर्मचारी भी रखा हुआ था जिसकी एकमात्र रुचि वेतन-सफ़ाई में थी.

इतने में एक कुत्ता आया. वहां बहुत सारे कुत्ते-कुत्तियां थे. कुत्ते ने इधर-उधर देखा. कुछ सूंघा, कूछ हटा. एक जगह पसंद की जो अपेक्षाकृत साफ़-सुथरी थी. पंजे झाड़े और एक आरामदेह खोह बना कर उसमें पसर गया.

उसे लेटे हुए ज़्यादा देर न हुई कि उन आदमियों में से किसी एक के जी में क्या आयी कि एक ढेला उठाया और कुत्ते के पेट का निशाना साध कर दे मारा. चोट बड़ी सख़्त थी, दर्द असहनीय. कुत्ते का जी चाहा कि गुर्रा कर ढेला मारने वाले पे चढ़ दौड़... यह क्या बदतमीज़ी है ! पर उसने बेचारगी से उन सब पर नज़र डाली और एक तरफ दौड़ गया... कौन इन असभ्यों के मुंह लगे.

ऊपर वाले ने कुत्ता तो मुझे बनाया पर कुत्ते की जूण ये भुगत रहे हैं. मरो सालो, इस गंदगी में...आदमी कहीं के.

आग और पानी

वह पिछले पचास सालों से जल रहा था, सिर्फ़ वही नहीं, उसका घर, उसका मुहल्ला, सारे बाज़ार, पूरा शहर... उसने शुरू में टेलीग्राम किये, राजधानी ट्रंककॉल बुक कराये, फिर एसटीडी बूथ जाने लगा. अब सेल फोन से फरियाद कर रहा है, मगर उसकी हर कोशिश बेसूद साबित हो रही है. प्रेसिडेंट, पी.एम., होम मिनिस्टर, सेना, पुलिस का चीफ़ - कोई भी ऑन लाइन नहीं मिलते.

हर बार एक रिकार्डेड आवाज आती है :

- क्षमा करें, इस रूट की तमाम लाइनें अति व्यस्त हैं. कृपया थोड़ी देर बाद डायल कीजिए.

आग बढ़ रही है और फोन का बिल भी.

लोहारपुरा, जोधपुर-३४२ ००२

सागर / सीपी

'अब अगर कहानी में स्त्री का ज़िक्र न हो तो मेरा पेन नहीं चलता !'

- प्रेम प्रकाश

('साहित्य अकादमी सम्मान १९९२' से सम्मानित पंजाबी के प्रख्यात कथाकार एवं 'लकीर' त्रैमासिक के संपादक **प्रेम प्रकाश** से पंजाबी के युवा कथाकार एवं 'शब्द' त्रैमासिक के संपादक **जिंदर** द्वारा की गयी बातचीत)

● **आप पंजाबी के एक चर्चित कहानीकार हैं. यह बताइए कि यह 'कहानी' क्या होती है और 'कहानीकार' क्या होता है ?**

कहानी सिर्फ़ 'बात' होती है. जब कोई व्यक्ति किसी नये अनुभव से गुज़रता है तो अपने तईं उसे अनोखा समझता है. मनुष्य भी सामाजिक प्रवृत्ति के अनुसार अपने उस अनुभव को दूसरों को बताता है. यह बात बताना ही कहानी का आरंभिक रूप है. दूसरों के लिखे अनुभव और ज्ञानशास्त्र को पढ़ते हुए वह अपने अनुभवों को अधिक अच्छी तरतीब में प्रभावशाली बनाने की कोशिश करता है. अगर पाठक और विद्वान कहते हैं कि 'मजा आ गया,' 'यह बात ठीक है' तो उसे कहानी मान लिया जाता है. इसी तरह अनेक व्यक्ति अनेक अनुभव बताते-लिखते रहते हैं. पाठक तो सम्मान करते हैं पर आलोचक परखते-निरखते हैं कि पिछले समय के परंपरागत रूपों में क्या कहानी है ? लिखने वाले कहानी के रूप बदलते रहते हैं. कई आलोचक भी इस काम में मदद करते हैं. बात को बताने वाला कहानीकार है. चाहे वह मंदिर-गुरुद्वारे का कथावाचक हो, चाहे वह टीले पर बैठकर गांव के लड़कों को बातें सुनाने वाला ताऊ और चाहे अख़बारों और साहित्यिक पत्रिकाओं में रचना छपवाने वाला लेखक.

● **आपकी राय में कहानी में अनुभव, कल्पना और यथार्थ का कितना मिश्रण होता है ?**

मैं अपनी कला की बात बताता हूं. जब कहानी रची जा रही होती है तो उसमें अनुभूतियों के और उसकी घटनाओं के टुकड़े होते हैं. किसी छोटे से अनुभव को कल्पना फैलाकर कहां का कहां ले जाती है. लेकिन, उस फैलाव में भी अनुभवों के कण होते हैं. वे कितने ही रूप बदलते-बदलते कुछ का कुछ बन जाते हैं. कई बार तो मुझे भी पता नहीं चलता कि यह बात कैसे आ जुड़ी है. हो सकता है, कोई देखी, सुनी या पढ़ी घटना बीस-तीस बरस पहले की अवचेतन में कहीं पड़ी अचानक जागकर सामने आ खड़ी हुई हो. वह कहानी के संगठन में एक हिस्सा बन गयी हो. पर मैं उन सारे टुकड़ों को पहचान नहीं रहा होता. फिर, अनुभवों में अनुभव प्रवेश कर जाते हैं. किसी एक की अपनी शिनाख्त नहीं रहती. संपूर्ण कहानी को इतने अणुओं में तोड़कर कौन देख सकता है. क्योंकि वह कहानी, कौन-से आम जन के साथ अनुभव जोड़-जोड़कर लिखी गयी होती है, वह तो किसी रहस्य भरे तरीके से अपने आप जुड़ जाती है. हां, इस जोड़ में लेखक की नीयत और उसके चिंतन का हिस्सा ज़रूर होता है.

● **आप ग्रामीण माहौल से आये. लेकिन आपके कथा-संसार में से गांव गायब है ?**

तुमने शायद ध्यान से नहीं पढ़ी होंगी मेरी कहानियां. या हो सकता है, गांव की कहानी तुम उसे समझते होगे जिसमें कुंओं, खेतों, किसानों और खेतिहर मज़दूरों का ज़िक्र हो. मैं अपने बारे में बता दूं कि मैं 'खन्ना' में जन्मा, चार जमातें 'भादसा' में पढ़ीं जो कि एक बड़ा गांव है, फिर 'खन्ना' अपने घर में रहा. 'खन्ना' कस्बों से बड़ा शहर है. अधिकतर लोग पढ़े-लिखे हैं. १९५० से १९५३ तक मैंने बड़गुजरां गांव में खेती की. अब मेरे अनुभव छोटे गांव से बड़े गांव, शहरनुमा कस्बे और फिर जालंधर शहर और फिर मेरी कल्पना के शहर के हैं. मैं इन सब माहौलों को अपने संग लिये घूमता हूं. गांव से इसलिए जुड़ा रहा कि वहां मेरे मां-बाप और ज़मीन थी. खन्ना से इसलिए कि वहां मेरे भाई, चाचा और पुश्तैनी घर था. मेरे अंदर अभी भी ये सारे रूप हैं. मैंने पहली कहानी 'उपत-खुपत' शीर्षक से लिखी, जो कि गांव के जट्टों द्वारा विहड़े (हरिजन बस्ती) के लोगों की नाकेबंदी करने को लेकर थी. फिर अन्य कई कहानियां लिखीं. वह अभ्यास का समय था. मैंने कई कहानियां गुम कर दीं. फिर भी कुछ कहानियों के नाम बताता हूं - बापू, कान्ही, कुंडली, सतवंती, रुकमणी, गढ़ी, अर्जन छेड़ गडीरना, कोठी वाली, कपाल-क्रिया, जड़ हरी, सुर्खरू, नावल का मुढ़, इस जन्म में, फैसला, बेवतन, सींह ते अमनतास, तपीआ, टाकी, कीड़े का रिज़क, मुरब्बियां वाली आदि-आदि. ये सभी गांव से संबंधित हैं.

● **आपकी अनेक कहानियों में स्त्री-पुरुष के, विशेषकर पति-पत्नी के संबंध टूटते हैं. क्या इसके पीछे कोई ख़ास कारण है ?**

नहीं, ऐसा नहीं है. ऐसा कुछेक कहानियों में हुआ है. ख़ासकर 'मुक्ति-१' और 'मुक्ति-२' में. 'टेलीफोन' और 'श्वेतांबर ने कहा था' में पत्नियां अन्य पुरुषों से दोस्तियां तो करती हैं पर पतियों से संबंध-विच्छेद स्वयं चाहकर नहीं करतीं. वैसे भी इस कड़वे संबंध के बारे में मेरा अनुभव बहुत कम है. पति-पत्नी के झगड़े को मैंने बहुत करीब से नहीं देखा. सब सुने हुए अनुभव हैं.

● फ्रॉयड कहता है कि किसी भी आदमी का व्यक्तित्व १२-१४ बरस की आयु में ही बन जाता है जबकि अमरीकी फिलॉस्फर हारलोक ने अपनी पुस्तक 'डेवपमेंट सायक्लॉजी' में यह आयु २०-२५ साल की मानी है. क्या आप इससे सहमत हैं ? क्या आप उस उम्र में स्त्रियों के प्रति आकर्षित हुए थे ? मेरे पूछने का अर्थ यह है कि आपके 'सब-कांसस माइंड' में औरत का संकल्प उस वक़्त तो पैदा नहीं हो गया था ?

मैं समझता हूं कि आदमी का व्यक्तित्व मां के गर्भ में ही बनने लग पड़ता है. गर्भ में जाते हुए भी वह अपने संग संस्कार (ज़ीन्स) लेकर आता है. ये संस्कार पिछली कई पीढ़ियों के होते हैं. इसीलिए ब्राम्हण और खत्री के पास अक्षर-ज्ञान संस्कार की तरफ से मिला होता है. फिर, व्यक्ति का वातावरण, वस्तुएं, विचारों से टकराव उसके संस्कारों को तोड़ता-फोड़ता और बनाता रहता है. इसी तरह नारी के बारे में मेरे संकल्प गर्भ में ही बनते और बचपन में ही पलते रहे हैं. मैं बहुत संकोची रहा हूं. स्त्रियों के साथ बात करना कठिन था. मैं किसी स्त्री को 'भाभी जी' या 'बहन जी' कहकर आवाज नहीं लगा सकता. स्त्री के साथ अलगाव या दूरी के अहसास ने मेरे अंदर बहुत-सी गांठें पैदा की होंगी जिनको खोलने का जतन मैं आज कहानियों में कर रहा हूं.

● यह औरत क्या है ?

औरत हमारी मां है. सबसे पहला वास्ता उसी से पड़ता है. फिर बहन है, फिर बेटी है, फिर पर-नारी है, पत्नी है, महबूबा है, दोस्त है. आगे हर व्यक्ति की अपनी पहुंच है कि वह औरत को किस रूप में देखता है. जैसे मर्द की नज़र बदलती है, उसी तरह औरत के रूप भी बदलते रहते हैं. कभी वह वेश्या भी होती और कभी देवी भी. वह दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, चंडी आदि कई रूपों में हमें दिखाई देती है. इतने ही रूप मर्द के होते हैं. मर्द स्त्री को समझने के चक्कर में है और स्त्री मर्द को. दोनों का मनोरथ एक-दूजे की शक्तियों और कमजोरियों को समझना और फिर इस्तेमाल करना है. पंजाबी साहित्य में औरत को समझना और उसके बारे में लिखना बहुत अच्छा नहीं समझा गया. पर मैं तो शुरू से ही लिख रहा हूं. मेरी पहली पुस्तक 'कच्चकड़े' में ऐसी ही कहानियां मिलेंगी.

● **औरत की सायकी को समझने के लिए आपको किन क़िताबों ने प्रभावित किया ? किन औरतों ने प्रभावित किया ? आपकी पत्नी ने कितना प्रभावित किया ?**

सोलह बरस की आयु से अब तक, मुझे जहां भी स्त्री का ज़िक्र मिला, मैं पढ़ता रहा हूं. क्या मनोविज्ञान, क्या दर्शन, क्या काम-शास्त्र, क्या धर्म-शास्त्र और क्या साहित्य. मैंने पौंडी साहित्य तक बहुत कुछ पढ़ा है. कोई एक पुस्तक अपने आप में संपूर्ण नहीं होती. बहुत-सी रचनाएं पढ़कर कहीं प्रभाव पड़ता है. वह इतनी बहुतायत में होता है कि पहचाना नहीं जा सकता. ज़िंदगी में जो भी स्त्री मिली, चाहे कुछ समय के लिए, मैं उससे भी प्रभावित

७ अप्रैल १९३२,

एम. ए. (उर्दू)

कृतियां

कच्च घड़े, नमाज़ी, मुक्ति, श्वेतांबर ने कहा था, प्रेम कहानियां, कुछ अनकहा भी, रंगमंच और भिक्षु (सभी कहानी-संग्रह);

दस्तावेज (उपन्यास);

बंदे अंदर बंदे (आत्मकथ्य).

सम्मान

पंजाबी साहित्य अकादमी सम्मान (१९८२),
जीएनडूयू वर्तक पुरस्कार (१९८६),
साहित्य अकादमी सम्मान (१९९२),
पंजाबी अकादमी दिल्ली द्वारा सम्मानित (१९९४),
पंजाबी साहित्य अकादमी, लुधियाना (१९९७).

संप्रति

स्वतंत्र लेखन एवं पत्रकारिता,
साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'लकीर' का संपादन

संपर्क

५९३, मोता सिंह नगर, जालंधर-१४४ ००१ (पंजाब)

हुआ हूं. मेरी कहानियों में औरतें ही औरतें हैं. हो सकता है कि किसी एक का प्रभाव अधिक पड़ता हो. उन सारे स्त्री पात्रों में मेरी पत्नी भी शामिल है. वह मेरी जीवन साथी है. मेरे बच्चों की मां है. घर का केंद्र है. उसी ने मुझे जीवित रखा है.

● **लेखक की ज़िंदगी में एक ऐसा समय भी आता है जब उसकी एक के बाद एक रचना की चर्चा होती है जो कि बहुत समय तक चलती रहती है. आपके साथ भी ऐसा हुआ है. आपकी एक के बाद एक कहानी हिट होती रही है. 'मुक्ति', 'डेडलाइन', 'श्वेतांबर ने कहा था', 'कपाल-क्रिया', 'गोई', 'शोल्डर बैग', 'बापू' के अलावा कई कहानियां. आप अब एक फासले पर खड़े होकर इन कहानियों को कैसे देखते हैं ?**

मेरी एक भी कहानी छपने के तुरंत बाद नहीं सराही गयी. 'डेड लाइन', 'सिरजना' पत्रिका में छपी थी तो रघबीर सिंह ने

अगले अंक में एक चिट्ठी छापी थी कि यह क्या बकवास कहानी छाप दी. उसे स्वयं कहानी पसंद नहीं थी. सिक्केबंद मार्क्सवादियों ने बड़ा विरोध किया था. यह तो धीमे-धीमे हवा बदली, कई बरसों में. पक्की तब हुई जब डॉ. हरिभजन सिंह ने 'तेरे नाम चिट्ठी' छपवाई. और फिर लिखी - 'खामोशी का जज़ीरा'. 'शोल्डर बैग' के बारे में सुरजीत हांस ने लिखा तो पाठकों को पता चला. 'कपाल-क्रिया' को अभी भी बड़ी कहानी सिर्फ़ डॉ. राही मानता है. हिट होने के लिए आधी उम्र चाहिए. वैसे यह हिट होना बड़ा ख़तरनाक है. एक उनके लिए जिनकी सहनशक्ति का जिगरा छोटा है और दूसरा उनके लिए जिनकी पहली पुस्तक हिट हो जाती है.

● 'डेड लाइन' कहानी कैसे लिखी गयी ?

यह कहानी १९७९ में लिखी गयी थी. बात बहुत पुरानी हो गयी है. मुझे अधिक कुछ याद नहीं. मेरे पास स्त्री के लिए तीव्र इच्छा का अनुभव बहुत भारी था. मृत्यु का अनुभव और दर्द मेरे एक छोटे भाई की दुर्घटना में हुई मौत का परिणाम था. वह गुड़ बनाने वाली कड़ाही में गिरकर जल गया था. फिर बहुत दिनों बाद पटियाला के अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी. मेरी ज़िंदगी का यह पहला बड़ा सदमा था जिसका असर मुझ पर लंबे समय तक रहा था. घटना की बुनियाद मुझे अपने मित्र ओमप्रकाश पनाहगीर के साले को हुए गले के कैंसर से मिली. उसका इलाज लंबा चला था. इस दौरान उसके व्यवहार में जो परिवर्तन हुए, उनके बारे में पनाहगीर मुझे बताता रहता था. मैं स्वयं भी उसका हालचाल जानने के लिए जाता रहता था. उसकी मृत्यु के बाद अकस्मात मेरी कल्पना में तस्वीरें बनने लगीं. वही तस्वीरें आपस में जुड़कर एक रात पूरी तस्वीर बन गयी. देवर-भाभी के इस रिश्ते की तस्वीरें पता नहीं कहां-कहां से बनीं. सच यह है कि किसी भी भाभी से मेरा कोई सरोकार रहा ही नहीं. मैंने अपनी भाभी को कभी कपड़े से भी नहीं छुआ. सिर्फ़ बातें सुनीं या कभी देखी थीं दोनों के संबंधों की. हमारे उप-सभ्याचार में देवर-भाभी का वह रिश्ता नहीं होता जो जट्टों या अन्य जातियों में हुआ करता है. इसीलिए इस कहानी के छपने पर कइयों ने कई एतराज़ किये थे.

● आपकी आरंभिक कहानियों में मौत का बार-बार ज़िक्र आता है. 'श्वेतांबर ने कहा था' का पात्र भी कहता है - अब मुझे मार दे. इस मृत्यु की धारणा का आरंभ कहां से हुआ ?

इसकी मुझे पूरी समझ नहीं. मेरी पहली कहानियां - 'कच्चकड़े' (१९६६) के पात्रों की सोच में गरमी, गुस्सा और जोश है. पर दूसरे कहानी-संग्रह 'नमाज़ी' (१९७१) के पात्र मौत के बारे में अधिक सोचते हैं. वे बूढ़े भी हैं. अगर जवान हैं तो उनकी सोच और स्वभाव बूढ़ों जैसा है. यहां तक कि जो कहानी नौजवान लड़के और लड़की के मिलाप की है, वह बूढ़े की नज़र से देखी गयी है. या जवान की सोच की गति सुस्त और ढीली-सी है. इसका कारण मेरे उस समय (१९६६ से १९७० तक) के निजी हालात भी हो सकते हैं. एक यह भी था कि प्रगतिवादी सोच के तीन टुकड़े हो चुके थे. समस्त देश के चिंतकों और लेखकों की सोच ढीली पड़ गयी थी. साहित्य में प्रयोगवाद, भूखी पीढ़ी, अकविता, अकहानी जैसे आंदोलन चल रहे थे. पुराने स्वप्न टूट रहे थे और नया सपना अभी कोई बना नहीं था. वह समय दुविधाग्रस्त मानसिकता वाला था. उसी मानसिकता का प्रभाव मुझ पर भी रहा होगा. लेकिन, बाद में 'मुक्ति' रंग की कहानियां लिखने लगा तो मौत की वह सोच मेरे साथ रही. मन की दुविधा ने और अधिक पेचीदगियां पैदा कर दीं. फिर मौत भारतीय दर्शन के रूप में मेरे अंदर काम करती रही. उस दर्शन के अनुसार मृत्यु मनुष्य की सारी सोच की जननी है. यह अच्छी अवस्था न होती तो हम ज़िंदगी के इतने सुखों-आनंदों के बारे में भी नहीं सोचते. भारतीय दर्शन में मृत्यु जीवन का अंत नहीं, आरंभ है. वहां से नया जन्म शुरू होता है.

● कुछ लेखकों/आलोचकों का विचार है कि आप 'प्रेम' के कहानीकार हैं. कुछ आपको स्त्री-पुरुष के गहरे संबंधों का कहानीकार मानते हैं. पर मेरे विचार में असल में 'प्रेम के रोग' के कहानीकार के रूप में आपका मूल्यांकन ठीक ही हुआ है. इस 'प्रेम के रोग' का बीज आपको कहां से मिला ?

यह बात मैंने कई बार स्पष्ट की है कि मैं प्रेम कहानियां नहीं लिखता. असल में, प्रेम शब्द का जो परंपरागत प्रयोग हुआ है, उसके अनुसार हमारे मन में 'हीर-रांझा', 'लैला-मजनूं', 'सस्सी-पुन्नूं' के पात्र आते हैं, जो प्यार में अंधे होकर बारह बरस कुएं से पानी खींचते हैं या भैंस चराते हैं. मैं इस अवस्था को पागलपन समझता हूं. मजनूं जुनून से बना है जिसका अर्थ है - पागल. ये कथाएं भावुक और मोटी बुद्धि वाले लोगों के मन बहलाने के लिए लिखी गयी होंगी. पर मैंने कहानियां पुरुष या स्त्री (चाहे जवान हों या बूढ़े) के आपसी रिश्तों के हर पल बदलते संबंधों की उधड़ी हुई परतों को समझने के लिए लिखी हैं. मेरे पात्र बहुत बार असाधारण लगते हैं. उनके विचार असाधारण मनोविज्ञान को समझकर ही समझे जा सकते हैं. मेरा ख़्याल है कि बहुत से लोग असाधारण होते हैं. जब उनकी असाधारणता बिगड़ जाती है तो वे मनोरोगी बन जाते हैं. हर व्यक्ति में कोई न कोई नुक्स है. वे नुक्स मुझे समझने के लिए दिलचस्प लगते हैं. मैं उनकी उलझनें बताता हूं. मेरे पात्रों की उलझनों को 'प्रेम-रोग' कहना उचित नहीं, यह तो 'जीवन-रोग' है. जीने के लिए तरह-तरह के चोचले, पाखंड और अदाकारी करते दिखाई देते वे सच्चाइयों को जीते हैं. जो साधारण बुद्धि वाले पाठक या आलोचक की पकड़ में नहीं आती. जीवन-रोग के बीज किसी विशेष समय में पैदा नहीं होते. वे तो जन्म से ही उगने लग पड़ते हैं और मरने तक अपने उगने का सिलसिला जारी रखते हैं. जीने की लालसा में अगर कोई स्त्री का संग शिद्दत से चाहता है तो दूसरा कोई कुर्सी के पीछे, धन

के पीछे या नाम कमाने के पीछे शैदाई हो सकता है. किसी के लिए भी प्यार के बीज के साथ आदमी के अंदर नफ़रत का बीज भी होता है. बदले की भावना भी होती है. मेरी कहानियों में और उनके पात्रों में इन सारी भावनाओं के बीज मौजूद हैं.

● **आपकी बहुत-सी कहानियां मनोविज्ञान-विश्लेषण की कहानियां हैं. क्या आपने परोक्ष या अपरोक्ष रूप में फ्रॉयड, जुंग, ऐंलडर का प्रभाव ग्रहण किया है ?**

मैंने कोई दर्शन संपूर्ण रूप में नहीं पढ़ा. हरेक को किसी प्रसंग के रूप में पढ़ा और समझा है. इसीलिए मैं किसी की बात कोट नहीं कर सकता. मैंने धार्मिक ग्रंथ भी बहुत पढ़े हैं. पर मुझे याद नहीं रहता कि मैंने कहां क्या पढ़ा था. अपने तौर पर मैं कह सकता हूं कि मैं मनोविज्ञान का विद्यार्थी हूं. अब भी यह सिलसिला जारी है. तुम्हारे मन की बात का जवाब यह है कि मुझे सबसे अधिक दिलचस्पी नर-नारी के रिश्तों के सच को जानने में है. जैसे पुरानी कहानियों में कहा जाता है कि अगर इतना समय तूने परमात्मा को याद किया होता तो बेड़ा पार हो जाता. मैंने स्त्री को इससे भी अधिक चाहा और उसके बारे में सोचा है. अब जब मैं कहानी लिखता हूं, अगर उसमें स्त्री का ज़िक्र न हो तो मेरा पेन नहीं चलता. स्त्री के बारे में मैं रोज़ कहानियां लिखता हूं, बेशक कल्पना में ही सही. जो आदमी स्त्रियों की बात नहीं करता, मैं उससे ऊब जाता हूं. मुझे लगता है कि वह पाखंडी है.

● **आप एक तरफ तो साधुओं-संतों को दुत्कारते हैं, एक वैज्ञानिक सोच वाले व्यक्ति की तरह. दूसरी तरफ आपको भगवा कपड़े खींचते हैं. आप कई बरस ऐसा बाना पहनते रहे हैं. यह स्व-विरोध अनजाने में हुआ या जान-बूझकर ?**

मेरा ख़्याल है कि वैज्ञानिक सोच से व्यक्ति को समझा नहीं जा सकता. पिछले समय में मार्क्सवादी लाल-बुझक्कड़ों ने ऐसे ही दावे किये थे, जो ग़लत निकले. मैं साधुओं-संतों को अब भी ठीक नहीं समझता. उन निकम्मों के कारण हमारी आर्थिकता बिगड़ती है. लेकिन, मैं यह भी मानता हूं कि गुरू, आचार्यों या संतों का भी समाज के संतुलन को बनाये रखने में वैसा ही रोल है, जैसा कि कोमल कलाओं और सामाजिक गतिविधियों का. मैंने भगवा चोला कई साल नहीं, बीस साल पहना होगा. अब कुछ बरसों से पहनना छोड़ा है, अपनी पत्नी के ज़ोर देने पर जब पहनता था तो अच्छा लगता था. भगवे रंग का बहुत आकर्षण रहा है मेरे लिए. मुझे बचपन में और फिर लड़कपन में जब मैं बाग़ी बन रहा था, साधू अच्छे लगते थे. मैं उनकी संगत किया करता था. यह रहस्यभरा विरोधाभास है मेरे चरित्र में. यह क्यों है, मुझे नहीं मालूम.

● **आपका नाम नक्सलवादी लहर से जुड़ा रहा है. आप इसके खट्टे-मीठे अनुभवों को 'दस्तावेज़' उपन्यास के रूप में सामने लाये हैं पर क्यों ऐसा लगता है कि आपने इस 'लहर' के साथ जुड़े रहते हुए भी अपनी कहानियों पर इसका कोई ठोस प्रभाव नहीं कबूला. आख़िर ऐसा क्यों ?**

१९६९ में पंजाब में नक्सली लहर का ज़ोर दिखाई देने लग पड़ा था. उसका सीधा असर कॉलिजों, स्कूलों के अध्यापकों, विद्यार्थियों और लेखकों पर अधिक था. इस लहर की अगुवाई कम्युनिस्ट पार्टी के क्रांतिकारी रोल से निराश हुए गर्म लहू वाले लोग कर रहे थे. उन दिनों में साहित्य का हाल यह था कि साहित्यकारों के ज़ेहन उलझे पड़े थे. भटके हुए आम लेखक निराशा भरे और बग़ैर सोचे-समझे टुल्ले लगा रहे थे. पर बांग्ला भाषा में क्रांतिकारी साहित्य रचा जा रहा था, जिसमें साहित्यकार केवल कलम चलाने वाला ही नहीं बल्कि स्वयं क्रांतिकारी लहर का हिस्सा बनने का दावा करता था. इसने हमारी भावनाओं को भी गर्म कर दिया था. अमरजीत चंदन ने एक गुप्त परचा 'दस्तावेज़' निकाला था. सुरजीत हांस इंग्लैंड में था. उसने पैसे भेजे और मैंने साहित्य को हथियार बनाने का दावा करके 'लकीर' निकाला, जिसमें ऊल-जुलूल साहित्य की निंदा की गयी और क्रांतिकारी साहित्य छापा गया. उस वक़्त भी मुझे मालूम था कि क्रांतिकारी साहित्य बड़ा साहित्य नहीं बन सकेगा. लेकिन, क्रांति के लिए साहित्य और अन्य किसी भी कला और निजी आज़ादी की कुर्बानी दी जा सकती है. इसी सोच से मैं 'लहर' परचा लहर के ठंडा होने तक निकालता रहा. पर मैंने स्वयं कोई क्रांतिकारी कहानी नहीं लिखी. 'पाश' ने इस बात का गिला किया था कि प्रेम प्रकाश ने हमें गुमराह किया. उसका दूसरा अनकहा गिला था कि मैं लाल सिंह दिल को बड़ा कवि बनाकर छापता था. मैं जानता था कि लहरों के समय बड़ा साहित्य नहीं रचा जाता. पर इस बात का अफ़सोस है कि लहर के बाद भी अच्छा साहित्य नहीं रचा गया. इसका एक कारण यह भी है कि हमारे साहित्यकार सियासी लीडरों के नीचे रहकर काम करते रहे हैं. वे सियासतदानों को अपने से अधिक चेतन मनुष्य मानते थे. जबकि सच्चाई यह थी कि सियासतदान मक्कार मनुष्य अधिक होता है. केवल कलाकार या धार्मिक मनुष्य की अंतरात्मा अधिक समय तक जागती रह सकती है.

● **'दस्तावेज़' के बाद आपने कोई उपन्यास नहीं लिखा. क्या आपको लगता है कि आप अब उपन्यास नहीं लिख सकते ?**

'दस्तावेज़' लिखने के समय मेरी सोच यह नहीं थी कि मैं उपन्यास लिख रहा हूं. उन दिनों (१९७३) मैं अपना मकान बनवा रहा था. अख़बार के दफ़्तर जाने से पहले और फिर रात को मैं मिट्टी और ईंटों से जूझता रहता था. घर में बिजली नहीं थी. पढ़ना कठिन लगता था. हम खुले मैदान में सोते थे. कोई अड़ोसी-पड़ोसी नहीं था. मैं लैंप जलाकर उसे सिरहाने की ओर रखे स्टूल पर रख लेता और थोड़ी-सी रोशनी में अपनी यादों को लिखता जाता. महीने भर बाद मैंने उन्हें पुनः पढ़ा तो अच्छी लगीं. मैंने आख़िरी चैप्टर गल्प के तौर पर जोड़ दिया. जब छपा तो इसे उपन्यास मान लिया गया और फिर सारी कम्युनिस्ट पार्टियों की ओर से इसकी निंदा की गयी. मुझे अमेरिका के हाथों बिका लेखक कहा गया. इसके बाद मैंने एक नॉवेल लिखने की कोशिश की, पर लिख न सका. एक नॉवेल १९६२ के आसपास लिखी थी,

उसे मैंने दसेक बरस रखकर फाड़ दिया. अब लगता है कि इतना लंबा काम करना मेरे वश में नहीं. अगर कोई बात मैंने कहनी या लिखनी होती है, वह कभी छोटी, कभी बड़ी और कभी लंबी कहानी बन जाती है. मेरी कोशिश होती है कि मैं कम से कम शब्दों में लंबी से लंबी बात कहानी में कर लूं. मैं या कोई अन्य साहित्यकार क्या कर सकता है और क्या नहीं, इस बारे में कोई भी नहीं बता सकता. पता नहीं किस वक़्त किससे क्या लिखना हो जाये.

● **आपकी ज़िंदगी का अहम हिस्सा पत्रकारिता में बीता. 'हिंद समाचार' में उप संपादक के तौर पर. आपने इन सालों में बतौर प्रेम प्रकाश कहानीकार और प्रेम प्रकाश कर्मचारी 'हिंद-समाचार' में तालमेल कैसे बनाये रखा ?**

इस तालमेल के लिए काम आयी मेरी ज़िद्द. मैं अख़बारों में काम करने से पहले अख़बार नवीसों से नफ़रत करता था. कुदरत ने मुझसे ऐसा बदला लिया कि मुझे अख़बार नवीस बनाकर पत्रकारों के साथ बिठा दिया. मैं इस अत्याचार को सहते, इससे लड़ते-भिड़ते काम करता रहा. इसी नफ़रत के कारण मैंने पत्रकारों को यह जाहिर नहीं होने दिया कि मैं कहानियां लिखता हूं. मैंने सौगंध खायी थी कि अख़बार में अपना नाम नहीं छपवाऊंगा और अख़बार के दफ़्तर में साहित्य की बात नहीं करूंगा. एक बार राम स्वरूप अणखी (पंजाबी के प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार) 'हिंद समाचार' में मिले और साहित्य के बारे में बात करने लगे तो मैंने उन्हें रोक दिया था. कहा था - यह बात घर चलकर करेंगे. जब मुझे 'पंजाब साहित्य अकादमी' का अवार्ड मिला तो मेरे अख़बार (हिंद समाचार) में और पंजाब केसरी में किसी अन्य का नाम छापा गया था. दूसरे दिन कर्तार सिंह दुग्गल ने आकर विजय कुमार को मेरे बारे में बताया था.

● **यह 'प्रेम प्रकाश खन्नवी' से 'प्रेम प्रकाश' बनने का क्या चक्कर था ?**

उर्दू के साहित्यकार या शायर अपने गांव-शहर का नाम अपने नाम के साथ जोड़ लेते थे. मैंने उनकी नकल की थी. यह नाम चल भी पड़ा था. मैं इस नाम से चार साल लिखता रहा. फिर 'चेतना' के संपादक स्व. स्वर्ण की सलाह पर मैंने इसे उतार फेंका. यह साहित्यिक हलकों में तो उतर गया पर पत्रकारिता के क्षेत्र में मुझसे चिपका हुआ है. 'मिलाप' और 'हिंद समाचार' में बहुत से पत्रकार साथियों को मेरे पूरे नाम का पता नहीं था. वे खन्नवी साहिब कहते थे. नाम के साथ साहिब कहना उर्दू वालों की सभ्यता थी. अब मुझे यह 'खन्नवी' न तो अच्छा लगता था, न ही बुरा. पहले गर्व हुआ करता था. अब तो मैं खन्नवी से अधिक जालंधरी हो गया हूं.

● **संदेह व्यक्त किया जा रहा है कि पंजाबी साहित्य के पाठक कम हैं. कोई भी परचा पांच-छह सौ से अधिक नहीं छपता. गैर-साहित्यिक ग्राहक चाहे दस हजार बना लो. कई इसे मीडिया के फैलाव का असर मानते हैं. क़िताबों के छपने की गिनती कम हो गयी है. जब यह संकट चल रहा है कि तो ठीक उसी समय फिज़ूल किस्म की आलोचना, लेख छपने शुरू हो रहे हैं. मैं यह पूछना चाहता हूं कि यह जो कुछ हो रहा है, क्या इससे पंजाबी में लिखने वालों या पाठक वर्ग पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ?**

पंजाबी के पाठक बढ़े हैं. जब अनपढ़ता घटती है तो पाठक बढ़ते ही हैं. साहित्य को भी उनमें से कुछ हिस्सा मिलता है. पर साहित्य के प्रबुद्ध पाठक इतने नहीं बढ़े. दूसरा, संचार माध्यमों ने अपना हिस्सा ले लिया है, जिसका प्रभाव क़िताबों की गिनती पर पड़ा है. साहित्यिक पत्रिकाओं का कम गिनती में छपना मेरी राय में कोई संकट नहीं है. यह संकट ख़राब साहित्यकारों के लिए है. पर वे भी चिंता न करें. उनका साहित्य छापने के लिए दैनिक अख़बार और चालू रसाले बहुत निकल रहे हैं. लेखक, साहित्यकार और आलोचक के मध्य ऐसा रिश्ता हमेशा से रहा है. मैं अख़बार नहीं पढ़ता. किसी के विरुद्ध या पक्ष में लिखा जाता रहा है. यह कोई नयी बात नहीं है. अब के समय को मैं पिछले समय से अच्छा समझता हूं. पहले पंजाब में संत सिंह सेखों जो कुछ कहता था, सब उसके पीछे चल पड़ते थे. अब हम किसी सीमा तक भेड़चाल से बच रहे हैं. इसका लेखकों और पाठकों पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा है. मार्क्सवादी भाई स्त्री-पुरुष के रिश्तों, संस्कृति और भारतीय दर्शन के बारे में सोचने-समझने लगे हैं. मुझे 'लकीर' पत्रिका की प्रतियां बढ़ाने में कोई दिलचस्पी नहीं. गिनती बढ़ेगी तो घाटा बढ़ेगा. अगर निशाना बहुतों को पाठक बनाने का हो जाये तो गुणात्मकता कम हो जाती है.

जिंदर,

संपादक 'शब्द,' ९८४ मॉडल हॉउस, जालंधर-१४४ ००३

(प्रस्तुति एवं अनुवाद : सुभाष नीरव)

शेष

(दो ज़बानों की एक क़िताब : एक तिमाही इंतिख़ाब)

- १९९४ से पाबंदी से प्रकाशित
- हिंदो-पाक की चुनिंदा उर्दू रचनाएं
- साथ में मौलिक हिंदी रचनाएं

संपादक

हसन जमाल

एक प्रति : २० रु., वार्षिक : ८० रु.,

आजीवन : १००० रु.

संपर्क : पन्ना निवास, साइकिल मार्केट के पास,

लोहारपुरा (राज.) ३४२ ००२

मोबाइल : ९८२९ ३१४ ०१८

पुस्तक समीक्षा

भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान राजनीति का पोस्टमार्टम

✍ प्रभा दीक्षित

सुरंग में सुबह (उपन्यास) : *मिथिलेश्वर*
प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली ११०००३ मू. : १८० रु.

हमारे लोकतंत्र की दलगत राजनीति किस तरह मूल्यहीनता एवं भ्रष्टाचार के गर्त में डूब चुकी है ? व्यवसायीकरण एवं अपराधीकरण की प्रक्रिया एवं आदर्शीकरण के शाब्दिक छद्म में छिपी मानवद्रोही प्रवृत्ति का हिंसक स्वरूप किस तरह आम आदमी को भावनात्मक रूप से ब्लैकमेल करता हुआ एक असुरक्षित समाज में शक्तिसंपन्न सुरक्षा के बीच ऐय्याशी करता हुआ, साधारण आदमी के जीवन से खिलवाड़ करता है, इसे पारदर्शिता से प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य कहा जा सकता है. बिहार की पृष्ठभूमि पर लिखा यह उपन्यास गांवों की राजनीति को शहरों से जोड़ता हुआ, बाजारवाद के मारक प्रभाव को मानवीय रिश्तों में प्रकट करता, शहरों के द्वारा गांवों के शोषण को चिन्हित करता, संस्कृति और राजनीति के अंतर्संबंधों को व्याख्यायित करता, अपने तेज बौद्धिक औजारों से मृत राजनीति की लाश को सफल सर्जन की भांति पोस्टमार्टम करने में सफल हुआ है.

साहित्य की किसी भी विधा में जब कभी लक्ष्य या उद्देश्य की प्रतिबद्धता होती है, तो किंचित कलाहीनता का पाया जाना स्वाभाविक हो जाता है किंतु एक छोटे से कथानक के द्वारा संपूर्ण मानव-त्रासदी के व्यापक आयामों को रेखांकित करने के प्रयास को मैकेनिकल-फार्म की संज्ञा नहीं दी जा सकती है. आदि से अंत तक पाठकीय रुचि का बना रहना इस बात का जीवंत प्रमाण है.

जनार्दन, गांव के मछुआरे का लड़का, जिसे उसके पिता तिरबेनी तत्कालीन सांसद, मंत्री मानवेंद्र बाबू के पास शहर ले जाते हैं क्योंकि उसने कभी मानवेंद्र बाबू की सिंगही नदी में कूदकर जान बचायी है, बदले में और कुछ न मांगकर हाई स्कूल पास बेटे की नौकरी चाहते हैं. मानवेंद्र बाबू वचनबद्ध हैं. देहाती बच्चे को अधिक पढ़ाने एवं अच्छी नौकरी दिला देने के वायदे के साथ उसे कोठी में रख लेते हैं. जहां वह उनकी समवयस्क लड़की की चाकरी एवं अपनी पढ़ाई को साथ-साथ अंजाम देता है. बस यहीं इस देहाती बालक जनार्दन को बहुत कुछ देखने और सीखने को प्राप्त होता है. मानवेंद्र बाबू की दुबारा जान बचाने का श्रेय और बदले में कृपापात्र बनने का सौभाग्य, बड़े लोगों के प्यार का यथार्थ, मानवेंद्र बाबू की स्वच्छंद पुत्री नंदिता के प्रति आकर्षण, उसका पुरस्कार स्वरूप समर्पण एवं उसे पुनः एक वफ़ादार उपयोगी नौकर से अधिक न समझे जाने की तल्ख हक़ीकत, नंदिता द्वारा सफलता प्राप्ति के लिए देह को सीढ़ी बनाने के सहज उपक्रम एवं राजनैतिक सत्ता के लिए हर तरह के गठजोड़, दंद-फंद, सियासी अमानवीयता एवं वर्ग भेद का व्यवहारिक स्वरूप आदि बहुत कुछ जान लेता है. जनार्दन को अपनी पढ़ाई के अंतिम वर्ष, मानवेंद्र बाबू की आकस्मिक हत्या के कारण, उनकी कोठी छोड़नी पड़ती है. गांव लौटकर पढ़ाई पूरी करने के बावजूद, वह नौकरी नहीं करना चाहता. उसने लोकतंत्र की दलगत राजनीति करने वाले मठाधीशों के दोहरे चरित्र को नज़दीक से देखा है. वह इसके बरअस्क एक ज़मीनी स्वस्थ राजनीति का मॉडल प्रस्तुत करना चाहता है, जिसमें आम आदमी की संपूर्ण भागीदारी हो. वह अपने पास के गांव की लड़की अंजली के प्रति आकर्षित हो जाता है जो स्वयं भी उसे पंसद करती है. इस पूरे उपन्यास में जनार्दन (नायक) अपने क्रांतिकारी विचारों एवं मानवीय व्यवहार के कारण छाया हुआ है. वह संगठन की शक्ति को पहचानता है, अतः जनदेश नामक एक जनवादी विपक्षी दल का सदस्य बन जाता है किंतु चुनाव के समय उसे अपना प्रत्याशी घोषित करने के बाद पार्टी सुप्रीमो पैसा लेकर एक पैसे वाले डॉक्टर को प्रत्याशी घोषित कर उसे निराश कर देते हैं.

इस कथानक के माध्यम से लेखक अपनी इस अवधारणा की पुष्टि करता है कि चुनावी राजनीति में कथित ज़मीनी जनवादी पार्टियां भी, कहीं न कहीं समझौता अवश्य करती हैं. 'काजल की कोठरी में कितना ही सयाना जाय' काजल के दाग से बच नहीं सकता.

आज के समसामयिक सवाल चाहे मानवीय संबंधों पर बाजार का प्रभाव हों, आधुनिक मीडिया का वर्गीय पक्षपात हो, दलित या नारी शोषण की समस्या या सांप्रदायिकता कोई भी सवाल लेखक की दृष्टि से अलक्षित नहीं रह सका है. अंजली की स्पष्टवादिता से प्रभावित होकर जनार्दन प्रारंभ में ही कहता है - 'लोगों का यह कहना उचित नहीं है कि महिलाएं अपनी प्रकृत्ति और स्वभाव से ही कमजोर और संकोची होती हैं, सच्चाई तो यह है कि किसी संगठन से जुड़ने या अन्य कारणों से अपनी सुरक्षा के प्रति आश्वस्त होने के बाद महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा अधिक निडर, अधिक स्पष्ट और अपनी चाहत के प्रति अधिक खुली हो जाती हैं,' यह एक व्यवहारिक सत्य है. आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार एक लंगड़ा व्यक्ति तेज भागने की परिकल्पना ही नहीं करता, सामर्थ्य एवं अवसर प्राप्त होने पर करके दिखलाता भी है. 'अवगुण आठ सदा उर रहहीं', की तुलसिया अवधारणाओं से लगा कर आधुनिक तथाकथित प्रगतिशील चिंतकों के फतवे जो स्त्री, पुरुष स्वभाव के विभाजन में दिये जाते हैं, कई बार बेहद लचर, अवैज्ञानिक, संस्कारग्रस्त एवं परिस्थितिजनक विसंगतियों की प्रतिक्रिया में व्यक्त होते हैं. बात मात्र समान

अवसरों की है. सच तो यह है कि कई बार एक-सी विषम स्थितियों में पुरुष जहां निराश होकर पलायन करता है, स्त्री अपनी स्वाभाविक आशावादिता के तहत मजबूती के साथ अपनी ज़मीन पर खड़ी रहने का प्रयास करती है.

चुनाव के समय जनार्दन की अपेक्षा नंदिता को मीडियावाले अधिक कवरेज देते हैं, उसका सामाजिक सरोकारों तक से कोई संबंध नहीं है. हां वह भूतपूर्व मंत्री की बेटी है. लेखक के शब्दों में, 'जनार्दन ने अपने जाग्रत विवेक के तहत नंदिता की ख़बर से अपनी ख़बर की तुलना करनी चाही... क्लिंटन के साथ भारत आयी चेल्सी मीडिया और लोगों के आकर्षण का केंद्र इसलिए बनी कि वह क्लिंटन की पुत्री थी. जनार्दन के पिता, तिरबेनी तो एक विपन्न मछेरा है. छविपुर गांव के बाहर उसे कोई जानने वाला नहीं है. वैसे गुमनाम और अभावग्रस्त मछेरे के बेटे को कोई पत्रकार क्यों बड़ी ख़बर बनाये.'

यह एक ज़मीनी सच्चाई है कि दुनिया भर के कवरेज का दावा करनेवाला आधुनिक सूचना तंत्र केवल बड़े लोगों के क्रिया-कलापों की सूचना देता है और आम आदमी की व्यक्तिगत त्रासदी की बात तो जाने दें कई बार सामूहिक नरसंहार तक उपेक्षित किये जाते हैं.

अपने त्रासद यथार्थ के संज्ञान को गोर्की ने अपने विश्वविद्यालयों की संज्ञा दी है और तभी इसके यथार्थ चित्रण के माध्यम से अपनी बात निकाल पाये हैं. यह कला प्रेमचंद और यशपाल के लेखन में पूर्णता प्राप्त करती दृष्टिगत होती है. बहरहाल प्रेमचंद, प्रेमचंद हैं और यशपाल, यशपाल किंतु इस उपन्यास का लेखक कहीं न कहीं इस परंपरा से जुड़ता अवश्य है. यद्यपि बिहार के ग्रामीण लोकजीवन के व्यापक आयामों का चित्रण इस उपन्यास में नहीं है. इसे कहीं-कहीं स्पर्श भर किया गया है किंतु इस स्पर्श के छोटे हिस्से को अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता. सपाटबयानी की भाषा में कथा यात्रा करती शैली कहीं उलझाती नहीं है, मैदानी नदी के प्रवाह-सी बहती है. कई बार लोकतंत्र के बीमार स्वरूप पर बौद्धिक संभाषण यशपाल के 'चक्कर क्लब' की याद दिलाते हैं. इस सबके बाद भी उपन्यास में आदि से अंत तक रुचि का बना रहना और सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं के प्रति यथार्थपरक ज़मीनी सोच, आम आदमी की पक्षधरता, व्यवस्था-परिवर्तन के लिए संघर्ष आदि का सफल चित्रण उपन्यासकार की सफलता को चिन्हित करते हैं.

उत्तर आधुनिकता के इस दौर में मिथिलेश्वर का यह उपन्यास पूरी साहसिकता के साथ अपना पक्ष प्रस्तुत करता है. वर्तमान भारत के फासीवादी कर्णधारों ने संपूर्ण देश को एक अंधी सुरंग में तब्दील कर दिया है जहां घने अंधेरे और भटकाव के बीच होने वाली सुबह के प्रति जनार्दन व उसके साथियों की आश्वस्ति लेखक की आशावादिता की ही परिचायक है.

१२८/२२२ वाई वन ब्लॉक,
किदवई नगर, कानपुर २०८ ०११

अंधी सुरंग में रोशनी की तलाश

अशोक प्रियदर्शी

जहां खिले है रक्तपलाश (उपन्यास) : *राकेश कुमार सिंह*
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २/३५ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली ११० ००२ मू. : ३०० रु.

वह जो कहने लगे हैं आजकल कि दलितों की व्यथा-कथा की ईमानदार अभिव्यक्ति दलितों के लेखन में ही संभव है और महिलाओं के दर्द को महिलाएं ही समझ और व्यक्त कर सकती हैं, उसका सच राकेश कुमार सिंह के उपन्यास "जहां खिले है रक्तपलाश" को पढ़ कर समझ में आता है.

अपने प्रतिबद्ध चश्मे से, खोजी पत्रकार की तरह, देख-समझ कर कोई 'पलामू' की पीड़ा को अभिव्यक्त करना चाहे तो उसमें अतिरेक भी होगा और यत्र-तत्र प्रामाणिकता में छिद्र भी दीखेंगे, चाहे वह महाश्वेता दीदी का लेखन ही क्यों न हो. पीड़ित को सहानुभूति नहीं उपचार की दरकार होती है और पलामू के अरण्य में स्थान खोजते रचनाकर्मियों की तो बात ही क्या ! एक तरफ जंगलविहीन होते और दूसरी तरफ 'जंगल' बनते पलामू की कथा जिस साहस के साथ राकेश कुमार सिंह ने बुनी है, वह शायद उन्हीं के वश की बात थी.

राकेश पलामू के बेटे हैं. वहां की पूर्णिमा के राग और अमा के विराग, दोनों को अत्यंत निकट से, पूरी आत्मीय निःसंगता से देखा-जाना है राकेश ने. तभी वे ऐसी प्रामाणिकता के साथ कटते वनों वाले 'जंगल' बनते पलामू की कथा इतने विश्वास के साथ कह सके हैं.

लेखक का संयम यह कि पाठक को रमाने-रिझाने के लिए 'चित्तकोबरा' या 'गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' जैसे 'सिर्फ़ वयस्कों के लिए' वाले प्रसंग कहीं नहीं, गो कि उसकी गुंजाइश बहुत ज़गह थी. अपवाद सिर्फ़ एक है, वह भी किसी कदर मर्यादित - एमेले टेकरू सिंह के साथ हैं आंगनबाड़ी-सेविका ताजमणि तिवारी... और "उत्तेजित ध्वनियों, सिसकियों और ओरेचन के रचपच-राग' से दारोगा रामायण राय के कानों की लवें तपने लगती हैं... कुनमुनाई ताजमणि की थकी-थकी आवाज आती है - 'आप तो देह तुर के धर देते हैं एकदम !'

कथित उग्रवाद की यह प्रामाणिक-साहसिक कथा कविता का आस्वाद देती है, बहुधा. क्योंकि पलामू की धरती से भावनात्मक लगाव है कथाकार का. हां, जेल की आखिरी शाम में सत्यवती और जेलर कुसुम यादव का वर्तालाप कुछ अधिक ही अकादमिक हो गया है. गो, पूरा उपन्यास पाठक को बांधे रखता है फिर भी, एक अर्थ में, यह पलामू में - और पलामू ही क्यों कहीं भी - पसरते उग्रवाद का समाजशास्त्रीय अध्ययन है.

पिछले कुछ वर्षों में जो उपन्यास मैंने पढ़े हैं उनमें '...रक्तपलाश' सर्वाधिक बांधने वाला लगा, इसलिए भी कि कथात्मकता का निर्वाह करते हुए इसमें नासूर बनते परिप्रेक्ष्य पर समग्रता में दृष्टि डाली गयी है और अपने तईं समाधान के संकेत भी दिये गये हैं. अंतिम संकेत तो यही कि पथभ्रष्ट खूनी क्रांति का अंजाम वही होना है जो पश्चिम बंगाल में हुआ. अंततः आपस में ही लड़-भिड़ कर या पुलिस की गोलियों का शिकार हो कर कथित उग्रवादियों की लीला समाप्त हो जानी है. किंतु मुझको लगा, आखिर में लाशों के गिरने और गिनने का प्रसंग थोड़ा फिल्मी हो गया है - विज्ञापनों में कहते हैं न, 'ऐक्शन और मारधाड़ से भरपूर फिल्म !' हालांकि यह भी ठीक है कि किसी भी कथा में कथाकार के सपनों के लिए भी तो ज़गह होनी ही चहिए, अन्यथा फोटो-कैमरा के करतब, विडियोग्राफी एवं कथा लेखन में फ़र्क क्या रह जायेगा ? बहरहाल,

यह कथा नंदू घटवार या सत्तो गुरूजी या गंगू बिंद या उसकी टोली के परमा पासियों, या उनके गुरू अन्ना, पंडित विजयभानों, नेपालिन परबतिया, सात बहिने और भाई भूप सिंह, सरजू और मुरली, दारोगा जगरनाथ बिंद और ताजमणि, ढोढ़ाई महतो, गनौरी रजवार, रुईया दूबे और इन सबों से बने अथवा इनके बीच बने 'जंगलदस्ता' की नहीं है. यह कहानी है 'जंगल बनते 'कोयल-अमानत' नदियों वाले पलामू की. एक कोलाज है. त्रासद किंतु सत्य को उकेरता कोलाज !

जंगलदस्ते में नंदू का होना और अंततः अपने श्रद्धेय-प्रिय के लिए बलिदान हो जाना यह संकेत करने को है कि जंगलदस्ते में क्यों और कैसे भटक कर पहुंच जाते हैं लोग और चूंकि नंदू घटवार जैसे लोग भी हैं, इसलिए जंगलदस्ते को पलामू को पूरी तरह जंगल बनाने में नाकामी ही मिलने वाली है. हम होंगे कामयाब एक दिन ! यह प्रच्छन्न आशावाद इस '....रक्तपलाश' को नयी ऊंचाई देता है. हेमिंग्वे के 'ओल्ड मैन एंड द सी' के बूढ़े मछुआरे की तरह एक उम्मीद बची है युवा लेखक के मन में.

क्या कहने के लिए राकेश ने बड़ा भावुक फ्रेम खड़ा किया है. नंदू घटवार के मन में सत्यवती पाठक के लिए अपार श्रद्धामिश्रित प्यार है. वह उन्हें सत्तो गुरू जी कहता है, क्योंकि स्कूल के दिनों में सत्तो ने ही उसे पढ़ाया-सिखाया था. स्कूल के गुरूजी लोगों से ज्यादा. सत्यवती का विवाह होता है किंतु दुर्योग से उसका सुहाग तुरंत पुछ जाता है. नदी-तट का एकांत पा कर सत्यवती का शीलहरण करना चाहता है उसका देवर पंडित विजयभान. पूरी शक्ति से प्रतिरोध कर रही थी सत्तो गुरूजी. आवेश में और आत्मरक्षार्थ, मछली मारने वाली बरछी डाल दी थी पंडित के पेट में घटवार ने. लेखक ने यहां नंदू घटवार की मनःस्थिति के संदर्भ में बड़ी अच्छी पंक्ति कही है - 'आज लगता है कि बहुत फ़र्क है मछली मारने और आदमी मारने में. मछली की जान जाती है तो बस मछली भर मरती है पर मानुष वध में मरने वाला भी छटपटा कर मरता है और मारने वाला भी रोज़ छटपटता रहता है.' तभी वहां पहुचता है गंगू बिंद का आतंकी गिरोह. सत्तो गुरूजी नंदू को भाग निकलने को कहती है. परिस्थितियां ऐसी बनती हैं कि नंदू उस आतंकी गिरोह के साथ हो लेता है और सरजू तथा मुरली पंडित की झूठी गवाही से सत्तो गुरू जी फंसती है. वकील की जिरह-बहस के प्रताप से सिर्फ़ सात बरस की कैद मिलती है उन्हें. इधर गंगू बिंद के गिरोह के सदस्य के रूप में जंगल-जंगल भटकता युग-साय के साक्षात करता चलता है नंदू घटवार. नंदू आतंकी गिरोह में रह कर भी अपनी आत्मा को मरने नही देता. वह सदैव न्याय का पक्ष लेता है. वर्ग-वैषम्य के विरोध में खड़ी लड़ाई को वर्ण-विरोध की ओर बढ़ते देख विरोध करता है नंदू घटवार.

'बाइस्कोप' के खेल की तरह जंगलदस्ता के सामने तस्वीरें बदलती रहती हैं. पलामू में कभी तूती बोलती थी बाबू और बदूंक की. बदल गया है ज़माना. जूता पहने ही पैर खाट पर चढ़ा कर लेट गया-है गंगू बिंद. बाबू साहब जंगलदस्ता के लोगों को पीढ़ा-पानी दे कर खाना खिलाते हैं और 'भोजन-दक्षिणा' देते हैं सो अलग.

तसवीर बदलती है. भुवनपुर का पुलिस पिकेट. थानदार बैजनाथ सिंह जंगलदस्ता के हमदर्द. दूसरी तरफ हैं फॉर्मर्स फ्रंट के शुभेच्छु दारोगा रामायण राय. ...नंदू को सत्तो गुरूजी की याद आती रहती है. कथारंभ था यह. अब आगे कथा का आरोह... 'आगे जंगल है.'

चेरो राजवंश के संस्थापक भागवंत राय से लेकर चुरामन राय तक की संक्षिप्त कथा. 'जयचंद' बने गोपाल राय ने पलामू के पतन की राह खोज निकाली थी. राजा मेदिनी राय के प्रति 'दलितों' में घृणा का भाव. 'विलियम मरांडी' - जैसों के बहाने धर्मांतरण के संकेत. जंगलदस्ता का दिमाग गलत तो नहीं कहता - चुनाव की राजनीति करने वाले दलबदलू नेता कभी हमें न्याय नहीं देंगे... संविधान का अनुच्छेद इक्कीस बस एक सरकारी ढकोसला रह गया है.

...हइ 'परमा पासी' देखो .... बाइस्कोप का अगला चित्र. 'टनकपुर बराज योजना' में ठीकेदार नीलकंठ सिंह जंगलदस्ता का आदमी है. परमा पासी इनका टोही है. सतबहिनी के इसी परिवेश में वह प्यार कर बैठता है नेपालिन परबतिया से. सुनाता है कथाकार सतबहिनी की करुण कथा.

और यह है गांव चांदो. 'दीदी' महाश्वेता देवी ने यहीं गुज़ारे थे अपने जीवन के कुछ अविस्मरणीय पल ! सन सत्तावन के विद्रोह की गवाह है यह धरती... चेमू सरैया गांव के चेमू सिंह के वीर बेटे नीलांबर-पीतांबर... परमा पासी के भीतर मानो वही तेज भर गया था.

जंगल दस्ता की जन-अदालत ! गोतवां की बेटी के बलात्कारी जोखन साव के बेटे हरिया साव का विवाह उसी लड़की

के साथ करा दिया जाता है. जन अदालत का फैसला अंतिम है और यही दरोगा रमैनी राम की घृण्य पुलिसिया टिप्पणी... 'एक दफ़े सील टूट जाये तो कहां पता चलता है कि बोतल में से किसने कितने घूंट पिये... का हुआ... खिया तो नहीं गयी टुनियां...' दस्ते के ही एक सदस्य नगीना सिंह द्वारा रूपलाल माझी की खस्सी चुराने की सजा कि नगीना सिंह खस्सी का मूल्य चुका दें. नगीना का दर्प जाग जाता है. अब वे अलग हैं और उनकी 'शांति सेना अशांति पैदा करने तथा जंगलदस्ता को अशांत करने में लग गयी है. नगीना को ठिकाने लगाता है पहला गिरोह और नगीना के संरक्षक साहुओं को भी ख़त्म करने पर तुला है. इस गोलीबारी में एक और विद्रूप. दस्ता के एक सदस्य ढोढ़ाई महतो एक औरत को झटके से ज़मीन पर गिराकर कह रहा है - 'तोहार मरदन लोग बहुत दिन लंगट-उघार किये हैं हमारी औरतन को. आज हम भी तो दखें कितना गोर-गार होता है सहुआइन लोगों का जांघ-चूतर...' औरत की इज्जत बचती है तो घटवार के हस्तक्षेप से.

गंगू बिंद की एक टिप्पणी ध्यान खींचती है - 'सरकार है डरामा पार्टी ! उड़ीसा में एक क्रिस्तान आदमी मराता है तो सरकारी मंतरी बदल जाता है. पलामू में रोज़ अपने लोग मराते हैं, पर कोई बात नहीं... ! विदेशी जन के लिए खूब दर्द है नेताजी लोगन के करेजे में, बाकी अपने गांव में भूत भी नाचे तो कोई फिकिर नहीं....'

पकड़ोफाट स्टेशन की लूटमार और आगजनी के समय निरपराध टोकनमैन को मारे जाने से बचाता है नंदू घटवार. नंदू की टिप्पणी है - 'सामंती ज़ात नहीं होती... सामंती होती है करतूत. ज़ात कोई भी हो जुलुम-जोर करे सो सामंत है. बड़जात भिखमंगई करता मरे तो कैसा सामंत....? हमारी लड़ाई वर्ग-शत्रुओं से है, न कि किसी खास जाति से....'

तस्वीरें, चलती-फिरती तस्वीरें, घना कोलाज... और अंत में वही, नंदू घटवार की बेकली, सत्तो गुरुजी के जेल से छूटने पर शिवघाट पर मिलने जाना... खूंरेजी... पुलिस आ गयी... दस्ता भी लहूलुहान है... लाशें ही लाशें हैं.... इन्हीं में है नंदू घटवार और सत्तो गुरु जी की लाशें भी. अन्ना की ज़गह लेने आया है सौमित्र चक्रवर्ती लेकिन देर हो चुकी है.

इस उपन्यास का नाम मेरी समझ में नहीं आया. पहले तो मैं 'है' को 'हैं' पढ़ता रहा. बाद में आश्वस्त हुआ कि यह 'है' ही है - 'जहां खिले है रक्तपलाश'... याने जहां रक्तपलाश खिलते हैं. उर्दू अंदाज में शीर्षक क्यों लगाया गया कह नहीं सकता.

दुहराता हूं, '....रक्तपलाश' अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास बन पड़ा है, गो है यह राकेश कुमार सिंह का पहला ही उपन्यास. राकेश को बधाई दी जानी चाहिए. और हां, पुस्तक का समर्पण अत्यंत करुण है.

नीचे करमटोली,
रांची (झारखंड) - ८३४ ००८

मानवीय संबंधों की सहज अभिव्यक्ति

डॉ. रूपसिंह चंदेल

औरत होने का गुनाह (कहानी संग्रह) : सुभाष नीरव
प्रकाशक : मेधा बुक्स, एक्स -११, नवीन शाहदरा, दिल्ली - ११० ०३२, मू. १०० रु.

समकालीन हिंदी साहित्य में जो कथाकार गत दो दशकों से कहानी, लघुकथा, अनुवाद आदि के माध्यम से निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाते रहे हैं, सुभाष नीरव उनमें एक ऐसा नाम है, जिन्होंने अनेक साहित्यिक क्षेत्रों में समान अधिकार पूर्वक कार्य किया है और आज वह जहां अवस्थित हैं, वहां उनके नामोल्लेख के बिना चर्चा बेमानी कही जायेगी. 'नीरव' का नवीनतम और दूसरा कहानी संग्रह - 'औरत होने का गुनाह' हाल ही में प्रकाशित हुआ है, जिसकी कहानियां अपनी सहजता, बोधगम्यता और अभिव्यक्ति की ताजगी के कारण आकर्षक हैं. 'नीरव' मानवीय संवेदनाओं को किसी चित्रकार की भांति जिस प्रकार उद्घाटित करते हैं, वह महत्वपूर्ण है. संग्रह की लगभग सभी कहानियां सामाजिक सरोकारों को समेटे लेखकीय गहनानुभव को प्रमाणित करती हैं. वे आम जन से पात्रों का चुनाव करते हैं और यह आम जन हमारे निकट का, हममें से ही एक.... प्रतीत होता है. रचना की विश्वसनीयता का इससे बड़ा आधार क्या हो सकता है कि पाठक जब पात्रों-घटनाओं में स्वयं या अपने किसी निकट की छवि देखने लगे तब रचनाकार की रचनात्मक सफलता स्वयं-सिद्ध कही जानी चाहिए.

समीक्ष्य संग्रह में दस कहानियां हैं. 'लड़कियों वाला घर' अपनी साधारणता में आसाधारण है. मिसेज शर्मा का कष्ट भारतीय समाज में किसी भी एक ऐसी मां का कष्ट है जिसके घर में दो जवान हो रही बेटियां हों. बस-स्टॉप के सामने सरकारी मकान मिसेज शर्मा की समस्या है. बस-स्टॉप पर मंडराते मनचले युवक, बेटियों के साथ छेड़छाड़ उन्हें मकान छोड़ने के विषय में सोचने को विवश करता है. लेकिन जब एक दिन युवकों से बेटियों को भिड़ते वह देखती है, मकान छोड़ने का विचार बदल जाता है. कहानी संघर्ष की प्रेरणा देती है. समस्याओं से पलायन विकल्प नहीं है. मिस्टर शर्मा का कथन, 'जब तक लड़कियां चुप रहती हैं, वे उछलते रहते हैं.' यह एक संकेत है कि वर्तमान त्रासद स्थितियों में मनचलों से जूझने के लिए लड़कियों को आगे आना चाहिए.

'वेलफेयर बाबू' मानवीय संबंधों को मार्मिकता से रेखांकित करती है. आज की स्थितियों का सम्यक आकलन है कहानी. स्वार्थ और अर्थवादी मानसिकता ने जीवन को जिस प्रकार प्रभावित किया हुआ है, उस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के निस्वार्थ-निर्छद्म सेवा को सामान्य भाव से नहीं ग्रहण कर पाता.

यही स्थिति हरिदा की है. सर्वप्रिय कॉलोनी में प्लॉट खरीदकर वे तब मकान बनवाकर रहने लगते हैं जब वहां दो-चार मकान ही होते हैं. वे कॉलोनी में बिजली-पानी, साफ़-सफ़ाई की समस्या के प्रति लोगों को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं. लोगों का नेतृत्व करते हैं और सुविधाओं के लिए दफ़्त रों के चक्कर लगाते हैं. लेकिन उनके सद्प्रयासों पर जब असलम टिप्पणी करता है - 'वेलफेयर बाबू, कॉलोनी खातिर बड़ा काम कर रहे हैं. कौन पार्टी से हैं आप ?'

हरिदा इस निम्न-मध्यमवर्गीय मानसिकता पर चुप रहते हैं. उनके प्रयासों से न केवल कॉलोनी की सड़कें बन जाती हैं, बिजली-पानी मिलता है, बल्कि वह साफ़ भी रहती है. लेकिन एक दिन जब डी. डी. ए. का नोटिस मिलता है उन्हें कि उनका मकान प्राधिकरण की ज़मीन पर बना है तब वे जितना विचलित होते हैं उससे अधिक तब होते हैं जब डी. डी. ए. उनके मकान पर बुलडोजर चलाकर ढहा रहा होता है और कॉलोनी के लोग, जिनके लिए हरिदा ने रात-दिन एक किया होता है, मूकदर्शक बने होते हैं. लेकिन शत-प्रतिशत... ऐसा भी नहीं है. असलम जैसे लोग भी हैं जो आगे आते हैं और निराश्रित हो चुके हरिदा को अपने घर रहने का आमंत्रण देते हैं. वर्तमान सामाजिक स्थितियों को जिस मार्मिकता और सूक्ष्मता से लेखक ने चित्रित किया है वह अपनी सहजता में कहानी को उत्कृष्टता प्रदान करता है. 'गोष्ठी' साहित्यिक राजनीति और तुच्छ महत्वाकांक्षा को अभिव्यक्त करती है. 'लुटे हुए लोग' वृद्ध मां-पिता और पुत्र के संबंधों को महानता से व्याख्यायित करती है. सुभाष नीरव उन कथाकारों में हैं जिनके पास सामाजिक संबंधों का गहन अनुभव है और वह अनुभव उनकी प्रत्येक कहानी में दृष्टिगोचर है. 'चोट' प्रेमी युगल की कहानी है, जिसे एक सामान्य कहानी ही कहा जायेगा. 'इतने बुरे दिन' में सुभाष 'लुटे हुए लोग' की भांति वृद्ध मां-पिता की दारुणावस्था को चित्रित करते हैं. 'औलाद के होते हुए भी बे-औलाद-सा अभिशप्त ! बुढ़ापे में ऐसी दुर्गति होगी, ऐसे बुरे दिन देखने को मिलेंगे उन्होंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था... पाठक को झकझोर देनेवाली कहानी है यह. वृद्धों पर लिखी हिंदी कहानियों में अपनी अभिव्यक्ति की सीमाओं के बावजूद यह एक उल्लेखनीय कहानी है. सुभाष नीरव की समीक्ष्य कहानी अपनी इस विशेषता के कारण पाठक पर अमिट छाप छोड़ने में सक्षम है.

'सांप' कहानी में लक्खासिंह तरखान के माध्यम से पूरी पंजाबी संस्कृति को अभिव्यक्त किया गया है. 'औरत होने का गुनाह' एक ओर जहां नारी विमर्श की कहानी है, वहीं सांप्रदायिक स्थितियों को भी उद्घाटित करती है. सुनीता और जावेद के प्रणय और विवाह के निर्णय से सुनीता की परवाह न करने वाले उसके पिता पंडित के. पी. शास्त्री और दो भाई रमेश और सुरेश का जातीय अहम जाग्रत हो उठता है. पति प्रकाश द्वारा प्रताड़िता सुनीता को वे लोग पुनः उसी के यहां भेजना चाहते हैं. सुनीता को घरवालों की इच्छा स्वीकार्य नहीं. वह नौकरी करती है और कमरा किराये पर लेकर अलग रहती है. सुनीता का साहसिक कदम भारतीय नारी में क्रमिक परिवर्तन को उद्घाटित करता है. पुरुष सत्ता को चुनौती देने का साहस आज की शिक्षित, विशेषकर नौकरीपेशा नारी में है. युगों से दलित भारतीय नारी का जाग्रत-काल है यह. लेकिन शायद लेखक भी कहीं आशंकित है कि भारतीय नारी को शिक्षित होना मात्र पर्याप्त नहीं है, क्योंकि नारी शिक्षित-अशिक्षित जब तक पुरुष पर आर्थिक रूप से निर्भर है उसकी कुटिलता-क्रूरता का विरोध शायद ही कर पाये... कर भी नहीं पाती. आर्थिक स्वतंत्रता पाकर ही वह पुरुष-सत्ता को चुनौती दे सकती है. पुरुष सत्ता तब भी अपनी क्रूरता से बाज नहीं आती. सुनीता का जावेद से विवाह का निर्णय उसके परिवार में भूचाल ही ला देता है. वे उसे धमकाते ही नहीं हैं, पेट्रोल डाल उसे जान से मारने का प्रयत्न भी करते हैं. जातीय अहंकार, सांप्रदायिक दंगे की ओट ले वे जावेद को मरवा भी देते हैं.

'भेड़िये' को संकलन की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहा जाना अनुचित न होगा. रतन बिहारी बिहार के एक गांव से नौकरी की तलाश में दिल्ली पहुंचा एक युवक - ढाबे में बंगाली बाबू से परिचय, उसी के माध्यम से एक दफ़्तर में अस्थाई चपरासी... बंगाली का उसके प्रति व्यवहार - उसे 'चिकना' कह प्रायः उसके गालों को सहलाना और एक रात उसे हमबिस्तर बनाने का प्रयत्न और अंत में खन्ना, जिसका वह चपरासी है, की विकृत यौन गतिविधियों को लेखक ने जिस सूक्ष्मता से चित्रित किया है वह महत्वपूर्ण है. खन्ना एडहॉक में किसी न किसी लड़की को नौकरी पर रखता है, लड़की यदि उसकी यौनिक इच्छाओं की पूर्ति में बाधक होती है तो वह दूसरे दिन दफ़्तर नहीं आती... समझौता करती है तब स्थाई हो जाती है. रतन गांव से आयी छोटी बहन को रीगल में सिनेमा दिखाने ले जाता है. संयोगतः खन्ना उसे वहां मिल जाता है. खन्ना को टिकट नहीं मिलता. रतन के हाथ में दो टिकटें हैं. रतन विवश है. बहन को खन्ना के साथ भेज देता है. लेकिन फिल्म के मध्यांतर तक वह विकल-परेशान रहता है. उसे खन्ना का भेड़िया रूप याद आता रहता है. इंटरवल में वह बहन को लेकर घर चला आता है यह सोचे बिना कि कल उसकी नौकरी रहेगी भी या नहीं. खन्ना जैसे सफ़ेदपोश शोषक लोगों को बेनक़ाब करती 'भेड़िये' हमें एक ऐसे संसार से परिचित करवाती है जहां अपनी पोजीशन का अनुचित लाभ लेने वाले खन्ना जैसे लोग हैं. सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्थितियों को अभिव्यक्त करती समीक्ष्य कहानी नासूर हो चुकी जीवन स्थितियों को गहनतापूर्वक प्रस्तुत करती है.

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि 'औरत होने का गुनाह' की कहानियां पाठक को न केवल आंदोलित करती हैं वरन सोचने के लिए विवश भी करती हैं.

बी-२३०, गली नं. ३,
सादतपुर विस्तार, दिल्ली-११० ०९४

रुपहली कहानियों का संसार

✍ ज्ञान वर्मा

महुआ के वृक्ष (कहानी संग्रह) : *गोवर्धन यादव*
प्रकाशक : सतलुज प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)
मूल्य : १५० रु.

'महुआ के वृक्ष' कहानी संग्रह गोवर्धन यादव की चुनी हुई कहानियों का पहला संग्रह है. आवरण पृष्ठ से लेकर प्रिंटिंग अच्छे और आकर्षक बन गये हैं. क़िताब को देखकर पढ़ने का मन करता है और जब क़िताब हाथ में आ जाती है तो छोड़ने का मन नहीं होता. विद्यार्थी जीवन में मैंने वृंदावन लाल वर्मा का 'झांसी की रानी' और 'मृगनयनी' उपन्यास पढ़े हैं जो बुंदेलखंड के जन-जीवन पर आधारित हैं. उसमें वहां के लोक जीवन, कला-संस्कृति राज-रजवाड़े, भाषा-बोली और आम जन-जीवन पर लेखक ने ऐसा प्रकाश डाला है और उसका ऐसा चित्रण किया है कि लगता है - लेखक पास रहकर सब-कुछ देख रहा हो और महसूस कर रहा हो. इसी प्रकार लगभग ३०-३२ वर्ष पूर्व धर्मयुग में अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता हुई थी और उसमें दिल्ली के मनहर चौहान की 'घरघुसरा' शीर्षक कहानी प्रथम आयी थी. वह कहानी भी बटसर के आदिवासी जीवन पर लिखी गयी सटीक रचना थी. मनहर चौहान तो दिल्ली में रहते थे लेकिन भाषा-बोली, जीवन शैली और कथनोपकथन बटसर का था. हमने उस समय मनहर जी से पूछा था कि इतनी अच्छी रचना आपने कैसी लिखी ? तब वे बोले कि छः महीने मैंने वहां के जन-जीवन में बिताये हैं. और भी कई लेखकों द्वारा आदिवासी जन-जीवन पर लिखा गया है और लिखा जा रहा है. लेकिन 'महुआ के वृक्ष' कहानी संग्रह की कहानियों को मैं इन सबसे कहीं अच्छा कहूंगा. बहुत गहरे तक उतर कर कहानियों के विषय में वरिष्ठ कथाकार श्री हनुमंत मनगटे ने अपने 'दो शब्द' में बहुत कुछ कहा है. वे कहानियों के बारे में तो बताते ही हैं - और कहानियों पर उन्होंने अच्छा प्रकाश डाला है - 'यह सुखद है कि वे आज की कहानी की चिंता, सोच, हद और जद से वाबस्ता हैं और उसकी कहानियां उस कैनवास के हर रंग, स्पेस, ज़मीन को छूती, टटोलती, परखती हैं, जो कहानी का संसार हैं. सतपुड़ा की वादियों में बसे आदिवासियों की जीवन शैली को कथाकार ने करीब से देखा है....'

'महुआ के वृक्ष' में पंद्रह कहानियां संग्रहित हैं - महुआ के वृक्ष, जूती, फांस, सगुन चिरैया, कुत्ता, एक मुलाकात, अनोखा निर्णय, माई इंडिया, चंद्रमुखी, प्रभा, और बसंत लौट आया, सच, रेत के घरौंदे, धनिया, और कौवे की लकड़ी.

'महुआ के वृक्ष' कहानी संग्रह की उत्तम एवं आदिवासी जीवन की जुझारू, पारदर्शी और यथार्थ के बहुत करीब गढ़ी गयी रचना है. 'कौवे की लकड़ी' आज की चापलूस और घिनौनी राजनीति का खुलासा है. 'जूती' में ग़ज़ब की गहराई है. एक ओर सामंतशाही की बू है. आज के धनाढ्य वर्ग की लोलुपता है तो दूसरी ओर राजसी ठाठ में जीने वाले और मखमली गद्दों में सोने वाली ममताहीन नारी का अंतर्कलह है और नारी की भूख ममत्व है और उसे पाने के लिए सब कुछ ताक में रखकर हरिया की झोपड़ी की ओर चल पड़ती है. शब्दों का तालमेल भी सूक्ष्मता से हुआ है. रईसों की नज़रों में आज भी औरत की कीमत एक जूती के बराबर है. आज भी इन रईसजादों के बिस्तर पर जवान औरतों को चादर की तरह बिछाया जाता है. चादर मैली हुई कि नयी चादर बिछा दी जाती है. एक बार तो वह चादर बनना ज़रूर पसंद करेगी, लेकिन जूती बनना पसंद नहीं करेगी, आदि शब्द हैं जो सच्चाई के अत्यंत नज़दीक हैं.

'सगुन चिरैया' में एक पक्षी के द्वारा जीने की राह छोटे-से जीव के सहारे मालामाल होने का ग़ज़ब का अनुभव है.

'एक मुलाकात' में गहरे तक झांकने वाली दार्शनिकता और कवीत्व मन की भावना के दर्शन होते हैं. 'रेत के घरौंदे' मानवीय जीवन के उत्सर्ग का सही दस्तावेज है. इस कहानी का अंत भी उत्कर्ष के चरम तक पहुंचाकर नयन सजल करा देता है.

इन सभी कहानियों की खूबियों के साथ-साथ पठनीयता को न केवल आकर्षक बनाती है, बल्कि जीवन के अंधेरे पक्षों को उजागर करते हुए पाठक की संवेदना को एक ऐसे बदलाव के लिए प्रेरित करती हैं, जिसमें एक ऐसे समाज की आकृति है, जहां मानवीयता और मनुष्य अपनी प्राकृतिक और स्वाभाविक महत्ता पा सकें.

फांस, कुत्ता, अनोखा निर्णय, चंद्रमुखी, प्रभा और बसंत लौट आया पाठक को कहानी पढ़ने के बाद एक समाजशास्त्रीय आकलन के लिए प्रेरित करती हैं. वर्णन शैली पाठक को अंत तक एक दिलचस्प अंत की ओर धकेलती जाती है. 'धनिया' की बुनावट तो क्रोशिये से बुनी गयी चादर तुल्य है. चढ़ती-उतरती पगडंडियां, वन्य प्रदेश, नये-पुराने का तालमेल, इच्छा-अनिच्छा और ओझा द्वारा इलाज, झाड़-पोंछ और गदराये यौवन का आस्वादन मानो रस और गंध मात्र उसी के लिए है. लंबे अनुच्छेद के बावजूद पाठक पन्ने पलटता ही जाता है और अंत में जब धनिया ने देखा कि वह निष्प्राण हो गया है, तो उसने उसे पूरी ताकत के साथ घसीटा और देनवा में फेंक दिया. उसने नीचे झांककर देखा, चांद के प्रभाव में चांदी सा हो आया जल सुर्ख लाल हो उठा था. पाठक को सुखद भविष्य की ओर धकेल देता है.

कहानियों में सामाजिक उत्पीड़न और बुराइयों की संवेदनशील बुनावट है, जो एक वैद्य की भांति नब्ज देखकर असली बीमारी को पकड़ने जैसी एक कार्यवाही है. कह सकता हूं कि ये पंद्रह कहानियां बदलाव के पंद्रह प्रतिनिधि विचार भी हैं.

✉ १०३ प्रतापबिहार-पार्ट १,
दिल्ली-११० ०४१

कविताएं

मोची और मैं

मिथिलेश 'आदित्य'

मेरे पास जब
नहीं थे जूते-चप्पल
तब मोची लोग
पांव क्या
मेरे मुंह को भी
देखना नहीं चाहते थे,

यह अलग बात है
कि उतने दिनों
मैं नंगे पांव धरती पर घूमा,
प्रकृति को निकट से जाना-पहचाना,
जिससे मेरी नज़रें तेज हुईं
दुनियां में चलने के काबिल हुआ,

और पढ़ने लगा -
ज़िंदगी का शब्दकोश,
रिश्तों का व्याकरण,
दुनियां भर की बातें,

लेकिन आज -
मोची लोग बहुत खुश हैं,
मेरे जूते-चप्पलों को देखकर,
सोचते हैं -
जूते-चप्पल का काम लेकर
आयेगा हमारे पास,
रोजी-रोटी बढ़ायेगा
इसीलिए आज ये
पहचानने लगे हैं
समझने लगे हैं - मुझे,

पर अब मैं -
अपने जूते-चप्पल खुद ठीक करूंगा
बीते दिनों को याद करते-करते.

रानीगंज/मेरीगंज, जिला-अररिया,
बिहार-८५४ ३३४

कौन सा राज़ खोल रही है लड़की ?

कैलाश पचोरी

भीड़ भाग रही है
सड़क हांप रही है
भीड़ को लगभग चीरते हुए
सामने से चला आ रहा है -
एक जोड़ा
भीड़ में रह कर भी भीड़ से दूर
खोया हुआ
किसी अजदहे सन्नाटे में
लड़की बहुत खूबसूरत है
लड़का सांवला
लड़की थोड़ी छरछरी है
लड़का पुष्ट और जवान
लड़की लड़के से एकदम सटकर चल रही है
लेकिन लड़का इस एहसास से बेख़बर है
लड़की लगातार बातें किये जा रही है
हंसती हुई/कभी आंखें नचाती हुई
लड़की मुखर है
लड़का खामोश
लगभग जड़ और तटस्थ
लड़की लगातार बोले जा रही है
आखिर क्या बोल रही है लड़की
इस बेतहाशा भीड़ में
कौन सा राज़ खोल रही है लड़की ?
आसान नहीं है
समझ पाना.

शारदा सदन, पो.मु. वैरसिया,
जिला भोपाल (म. प्र.) ४६३ १०६

आपकी किसी भी तरह की भागीदारी का स्वागत है. इस अंक पर अपनी बेबाक प्रतिक्रिया अवश्य भेजें. हमें आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है. -सं

ज्ञान की भी इक कलाली हो

✍ हृदयेश भारद्वाज

हकीकत में ये खामख्याली हो,
सब हो बंदे, सभी सवाली हों.
बर्फ को बर्फ सा चमकने दें,
उसपे न खून की अब लाली हो.
ना समझो जानवरों की बस्ती में,
ज्ञान की भी इक कलाली हो.
बागबां खूब लगाओ लेकिन,
कालिदासों से न उनके माली हों.
आत्माएं हो सफ़ेद, दूध-जैसी,
त्वचाएं भले ही अपनी काली हों.
मन हमेशा ही रहें भरे भरे सबके,
जेबें अपनी भले ही खाली हों.
चलते रस्ते, कैसे पहचानेंगे,
खुशियां कोई तो देखी भाली हों.

ग़ज़लें

चारों और यहां दलदल है

चारों और यहां दलदल है,
सूखी नदियां उथला जल है.
श्वेत धवल दिखते तंबू के,
भीतर बस कज्जल कज्जल है.
भावशून्य चेहरों के अंदर,
सृष्टि बदल दे यूं हलचल है.
किस किस पर एतबार करें हम,
चिंदियों के सभी महल हैं.
मन कोढ़ी हो चुके सभी के,
रो रो कर कह रही ग़ज़ल है.
कुछ करने की चाह जिन्हें थी,
पुर्जा पुर्जा वही शकल है.
उसने कहा -"हमें ले जाओ,
हम पीड़ा हैं, हममें बल है."

८६१(२) द्वारकापुरी, इंदौर (म. प्र.) ४५२००९

लघुकथा

फासला

✍ मंगला रामचंद्रन

रेणु का बेटा छः वर्षीय बंटी, मां से किसी चीज़ की मांग को लेकर जिद कर रहा था. रेणु उसे समझा रही थी -'बेटे, हर काम को करने का और खाने का वक़्त होता है. बेवक़्त करने या खाने से नुकसान ही होता है.'

'मुझे तो अभी चाहिए, वरना...ऽ...ऽ,' नन्हें से बेटे के मुंह से वरना सुन कर रेणु को हंसी आ गयी. मां को हंसता देख बंटी ने अपनी बात कुछ इस तरह पूरी की - 'वरना मैं आपका रेप कर दूंगा.'

रेणु क्रोध से कांपने लगी और आवेश में उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे. पर हाथ उठ गये और उसने ज़ोर से धक्का दिया. बंटी सोफ़े से नीचे गिरा और रोने लगा, उसे थोड़ी सी चोट भी आ गयी थी.

थोड़ा सा क्रोध कम होने पर रेणु ने पूछा - 'ये कहां से सीखा? किसने सिखाई ऐसी गंदी बात ?'

'जब फिल्म में दीदी कहना नहीं मानती तो गंदा आदमी ऐसा ही करता है'-बंटी सुबकते हुए बोला.

'तुम गंदे आदमी हो क्या ?' 'आप चीज नहीं दे रही थी इसलिये गंदा आदमी बन गया.'

रेणु ने गौर से बेटे के चेहरे को देखा, वहां अभी भी बाल-सुलभ भोलापन और चपलता ही नज़र आ रही थी. फिर भी शंकित मन को शांत करने को उसने पूछा- 'रेप क्या होता है?'

'मुझे क्या पता? कोई सांप होगा जिससे गंदा आदमी कट वाता होगा. मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, मैं तो वैसे ही आपको डरा रहा था जिससे आप चीज दे दो'- अपनी नन्हीं खाली हथेलियां हिलाते हुए बोला.

रेणु की सांस में सांस आई, 'शब्द और उसके अर्थ का फासला अभी भी बहुत है'- उसने मन ही मन कहा.

४१-डी/डी/एस-३, स्कीम ७८, अरण्य नगर, इंदौर-४५२ ०१०

ग़ज़ल

✍ शिव ओम अंबर

कि हर अगले क़दम पे इम्तहां है,
अदब की राह में राहत कहां है.
बबूलों से बिंधी है शोख़ तितली,
ग़ज़ल की इन दिनों ये दास्तां है.
क़िताबें हिब्ज करके क्या करेगी,
मोहब्बत बेज़ुबां थी बेज़ुबां है.
फ़क़ीरों को भला क्यों कर पता हो,
कहां थी सीकरी दिल्ली कहां है !

४/१० नुनहाई, फ़र्रुखाबाद (उ. प्र.) २०९६२५

लघुकथा

समझौता

✍ मनोज सोनकर

प्रमोद उर्फ़ पंचर और बबीब उर्फ़ हंटर शहर के कुख्यात गुंडे हैं. उनका गैंग बहुत ही बदनाम और खतरनाक है. वे शहर को अपने इशारे पर नचाते रहते हैं और पुलिस उनके पीछे भागती रहती है. काला रंग, तगड़ा शरीर, लंबा कद, बड़ी-बड़ी लाल आंखें, छोटे बाल, खड़ी मूंछोवाला पंचर जोर जोर से बोलता है और हाथ पटक पटक कर बात करता है. गोरा रंग, पतला शरीर, नाटा कद, छोटी आंख और बड़े बालवाला हंटर मीठी आवाज में बात करता है और बात-बात में मां-बहन की गालियां बकता है. दोनों आमने सामने बैठ कर शराब पी रहे हैं.

- अरे ! पंचर ! लिस्ट लाया है या भूल गया है ? हंटर ने पूछा है.

- लाया हूं, देख और गौर से देख.

हंटर लिस्ट देखता है :

'हनुमान वस्त्रालय'
'साक्षी घड़ी स्टोर्स'
'जीवन मेडिकल स्टोर्स'
'ममता अन्न भंडार'
'श्रृंगार ज्वेलर्स'
'भवानी भास्कर होटल.'

- लिस्ट तो बहुत तगड़ी है. हंटर कान खुजलाता है.

- अपनी लिस्ट दिखा. पंचर सिगरेट जलाता है.

- देख और नज़र गड़ा कर देख !

पंचर लिस्ट देखता है :

'तंजेब स्टोर्स'
'रूहानी घड़ी स्टोर्स'
'गफ़ूर मेडीकल स्टोर्स'
'रियाज़ अनाजवाला'
'हसीना ज्वेलर्स'
'लज़ीज होटल...'

- तेरी लिस्ट भी अच्छी है. एक बात तू कान खोल कर सुन ले. दंगा भड़कते ही तू मेरी लिस्ट पर हाथ साफ़ करेगा और मैं तेरी लिस्ट पर हाथ साफ़ करूंगा. नफ़ीसा ने मुझे भरे बाजार में चप्पल मारा था, मैं उसे उठा ले जाऊंगा और गीता ने तेरे मुंह पर थूका था, तू उसे उठा ले जाना. दोनों अपने वायदों पर कायम रहेंगे, कोई भी चाल नहीं चलेगा. चाल चलनेवालों की सजा मौत होती है, यह तू भी जानता है और मैं भी जानता हूं. दोनों हाथ मिलाते हैं.

दंगा भड़क उठा है. तलवारें चमक रही हैं, लपटें उठ रही हैं, गोलियां चल रही हैं. कोई चीख रहा हैं, कोई चिल्ला रहा है, कोई रो रहा है. पुलिस की गाड़ियां दौड़ रही हैं, सायरन बज रहा है, लूटपाट हो रही है...

- अरे ! कोई मेरी नफ़ीसा को बचाओ ! उसकी अम्मा चीख रही है...

- अरे ! कोई मेरी गीता को बचाओ. उसकी मां चिल्ला रही है...

- सस्ते में घर और दुकान दिला दूंगा. रामू फुसफुसाया है...

- यही मौका है प्रॉपर्टी खरीदने का. अब्दुल बुदबुदाया है...

- जो कोई भी हिंदुओं पर हाथ उठायेगा, उसका हाथ काट कर फेंक दिया जायेगा. कुछ आवाजें आ रही हैं.

- जो कोई भी मुसलमानों को टेढ़ी नज़र से देखेगा, उसके ज़िस्म के टुकड़े कर दिये जायेंगे ! कुछ छाती ठोक रहे हैं.

दंगा चल रहा है और जोर शोर से चल रहा है...

✍ ६९९/३, शर्मा निवास, जामेजमशेद रोड, मुंबई - ४०० ०१९.

ग़ज़ल

✍ शिव ओम अंबर

उस अल्हड़ को गृहलक्ष्मी की गतिविधियां सिखलाना है,
अब उसको पल्लू सर पे रख संध्या-दीप जलाना है.
सबकी आंखों में सपने थे सबकी आंखें गीली हैं,
दो लफ़्ज़ों में इस बस्ती का इतना ही अफ़साना है.
चाहे जितनी कसकर बांधो मुट्ठी खुल ही जाती है,
मौसम कैसा भी हो उसको परिवर्तित हो जाना है.
वो अक्सर करता रहता है चर्चाएं आदर्शों की,
वो शायद दानिशमंदों की नज़रों में दीवाना है.
जिसमें टूटे फ्रेमों वाली कुछ धुंधली तस्वीरें हैं,
हर दिल की बैठक के नीचे इक अंधा तहख़ाना है.
अंबर जी पढ़नी हैं तुमको ग़ज़लें इस कोलाहल में,
अंगारों पे रजनीगंधा की कलियां बिखराना है.

✍ ४/१० नुनहाई, फ़र्रुख़ाबाद (उ. प्र.) २०९६२५

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत 'कथाबिंब' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण :-

१. प्रकाशन का स्थान	: आर्ट होम, शांताराम सालुंके मार्ग,
	: घोडपदेव, मुंबई-४०० ०३३.
२. प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम	: मंजुश्री
४. राष्ट्रीयता	: भारतीय
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई ४०० ०८८
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी मंजुश्री

मैं मंजुश्री घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - *मंजुश्री*)

निवेदन

रचनाकारों से

'कथाबिंब' एक कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका है. कहानी के अलावा लघुकथाओं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें, साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं कागज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों अथवा टंकित करवा कर भेजें.

३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास रखें. **वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा अवश्य साथ रखें.**

४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है, अन्य रचनाओं की स्वीकृति या अस्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों / सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनीकरण करा लें. नये सदस्यों/ग्राहकों को शुल्क प्राप्त होने की अलग से सूचना भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

बराबर (पा.) - ए. पी. अकेला, ५ यतीश बिजनेस सेंटर, इर्ला सोसायटी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६

कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००१ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१

दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०

मधुमति (मा.) - वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी, सेक्टर-४, उदयपुर ३१३ ००२

वागर्थ (मा.) - विजय दास, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७

समाज प्रवाह (मा.) - मधुश्री काबरा, गणेश बाग, जवाहर लाल नेहरू रोड, मुलुंड (प.), मुंबई ४०० ०८०

साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२

साहित्य क्रांति (मा.) - अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश,' भार्गव कॉलोनी, गुना ४७३ ००१ (म. प्र.)

शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१

शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९

अरावली उद्घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४

अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३

अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, डी-१३१ रमेश विहार, निकट ज्ञान सरोवर, अलीगढ़ (उ. प्र.)

असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड्ई, पो. पन्नूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)

अक्षरा (त्रै.) - विजय कुमार देव, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२

आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया - ४६१ ७७५ (म. प्र.)

औरत (त्रै.) - मेनका मल्लिक, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४

अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, अंचल भारती प्रिंटिंग प्रेस, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया - २७४ ००१

अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४

अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६

कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४

कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१

कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३

कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१

कथा सागर (त्रै.) - डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', ६१ सेक्टर-२, हारुन नगर कॉलोनी, फुलवारी शरीफ़, पटना - ८०१ ५०५

कारवां (त्रै.) - कपिलेश भोज, पो. सोमेश्वर, अल्मोड़ा - २६३ ६३७

कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', विकास भवन, बहराइच - २७१ ८०१ (उ. प्र.)

कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१

कौशिकी (त्रै.) - कैलाश झा किंकर, क्रांति भवन, चित्रगुप्त नगर, खगड़िया - ८५१ २०४

गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२

तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१

तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१

दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां" मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२

दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)

दीर्घा (त्रै.) - डॉ. विनय, २५ बैंग्लो रोड, कमला नगर, दिल्ली ११० ००७

द्वीप लहरी (त्रै.) - डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर ७४४ १०१

डांडी-कांटी (त्रै.) - मधुसिंह विष्ट, भगवान नगर, नलपाड़ा, सैंडोज बाग, कापुर बावड़ी, ठाणे ४०० ६०७

निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२

निष्कर्ष (त्रै.) - गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर - २२८ ००१

परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६

पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८

प्रगतिशील आकल्प (त्रै.) - डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज क्लासेज, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई ४०० ०६०

प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७

प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६

पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, निराला नगर, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर ८४२ ००२ (बिहार)

पुरवाई (त्रै.) - पद्मेश गुप्त, (भारतीय संपर्क : ऋचा प्रकाशन, डी-३६ साउथ एक्सटेंशन, पार्ट-१, नयी दिल्ली ११० ०४९

भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८

मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१
मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१
युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबू, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)
युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५
वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४
वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, टैगोर हिल रोड, मोराबादी, रांची ८३४ ००८
विषय वस्तु (त्रै.) - धर्मेंद्र गुप्त, २७४ राजधानी एन्क्लेव, रोड नं. ४४, शकूर बस्ती, दिल्ली - ११० ०३४
संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ ब्ल्यू ओसन, ब्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५
सही समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ई-५०३, गोकुल रेजीडेंसी दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.), मुंबई - ४०० १०१
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं. १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
अविरल मंथन (अ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार-२००३'

'कथाबिंब' के प्रकाशन का यह २५ वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २००३ के 'कथाबिंब' के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई !

प्रथम पुरस्कार (१००० रु.)

रावलपिंडी एक्सप्रेस - *सुधीर अग्निहोत्री*

द्वितीय पुरस्कार (७५० रु. प्रत्येक)

स्पर्श - *संजीव निगम* ● चंद्रग्रहण - *राजीव सिंह*

प्रोत्साहन पुरस्कार (५०० रु. प्रत्येक)

● बिटिया - *डॉ. किसलय पंचोली* ● पत्थर की अहिल्या *उर्मि कृष्ण*

● प्रेतमुक्ति - *डॉ. वासुदेव* ● अब आरुषि कहेगी.... ! *अलका अग्रवाल सिगतिया*

● पानी के रंग - *डॉ. दामोदर खड़से*

'कथाबिंब' परिवार के सदस्य श्री प्रबोध कुमार गोविल के बढ़ते कदम

पिछले दिनों प्रबोध कुमार गोविल को उनके नये कहानी-संग्रह 'सत्ताघर की कंदराएं' पर अक्षरधाम समिति, हरियाणा का 'अक्षर भूषण पुरस्कार' घोषित किया गया. श्री गोविल को जैमिनी अकादमी के 'सुभद्रा कुमारी चौहान जन्म शताब्दी पुरस्कार' के लिए भी चुना गया है. इसके अलावा, पिछले दिनों उत्तर प्रदेश के संस्कृति विभाग ने भी श्री गोविल को पुरस्कार प्रदान किया था. इससे पूर्व जयपुर में राज्यपाल ने उन्हें स्वर्ण पदक से भी सम्मानित किया था.

उल्लेखनीय है कि प्रबोध कुमार गोविल के कहानी-संग्रह की शीर्षक कहानी "सत्ताघर की कंदराएं" 'कथाबिंब' में प्रकाशित हुई थी.

: प्राप्ति-स्वीकार :

सत्ताधार की कंदराएं (क. सं.) : प्रबोध कुमार गोविल, सुकीर्ति प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल-१३६०२७. मू. १२०/-

दूसरा नरक कुंड (कहानी संग्रह) : जयवंती डिमरी, अभिषेक पब्लिकेशन्ज़, एस. सी. ओ., ५७-५९ सेक्टर, १७ सी, चंडीगढ़ - १६००१७. मू. १५०/-

कथा दशक (क. सं.) : सं. सूरज प्रकाश, मेधा बुक्स, एक्स-११, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. २००/-

गद्य सप्तक-१ (क. सं.) : सं. उमाशंकर मिश्र, उद्योग नगर प्रकाशन, ११बी-१३६, नेहरू नगर, गाज़ियाबाद (उ. प्र.). मू. २२५/-

रेत का घरौंदा (क. सं.) : राजेंद्र कुमार रस्तोगी, पांचाल प्रकाशन, ११० बी, सिविल लाइन्स, बरेली-२४३००१. मू. ५०/-

मरी खाल : आखिरी ताल (क. सं.) : देवेंद्र कुमार पाठक, प्रज्ञा प्रकाशन, बेंकट पुस्तकालय परिसर, कटनी-४८३५०१. मू. ५०/-

बंदरों के बीच (क. सं.) : डॉ. परमलाल गुप्त, पीयूष प्रकाशन, नमस्कार, शारदा नगर, बस स्टैंड के पीछे, सतना - ४८५००१ मू. ६०/-

त्रयोदशी (क. सं.) : भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज़', सत्साहित्य प्रकाशन, एफ-एफ-४, बी-ब्लॉक, सनपॉवर फ्लैट्स, अहमदाबाद-३८००५२. मू. ४०/-

कड़वे सच (ल. सं.) : दिलीप भाटिया, आरती प्रकाशन, १२/३ श्याम पुरी, खतौली-२५१२०१. मू. ८०/-

आपका अपना ही (पत्र-संग्रह) : सदाशिव कौतुक, 'साहित्य संगम', श्रमफल, १५२०, सुदामा नगर, इंदौर - ४५२००९. मू. १२०/-

साम्राज्यवाद बेनक़ाब (निबंध) : डॉ. सोहन शर्मा, संयोग प्रकाशन, ९/ए, चिंतामणि एपार्टमेंट, काशी विश्वनाथ नगर, भायंदर (पू.) मुंबई ४०११०५. मू. १००/-

एक भिखारिन की मौत (नाटक) : संजय भारद्वाज, क्षितिज प्रकाशन, १६ कोहिनूर प्लाज़ा, पेट्रोल पंप के पास, एलफिन्स्टन रोड, खड़की, पुणे-४११ ००३. मू. १००/-

सदियों का सपना (कविता) : अक्षय गोजा, सुरेंद्र कुमार एंड सन्ज़, ३०/२१-२२A. गली-९, विश्वास नगर, शाहदरा-११००३२. मू. १००/-

वक़्त का शाहकार (कविता-संग्रह) : डॉ. रामप्रकाश 'अनंत', आल्टरनेटिव पब्लिकेशन, बी-१६ प्रताप नगर, जयपुर हाउस, आगरा-२८२०१०. मू. २५/-

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

सरयू का निर्मल तीर (उपन्यास) : कीर्ति परदेसी, मू. ६०/- चल उड़ जा रे पंछी (नाटक) : आफ़ताब हसनैन, मू. ५०/-

प्रकृति और उन्नति (का. सं.) : विजयकुमार भटनागर 'विजय', मू. १००/-

आज शहर खामोश है... (ग. सं.) : अरविंदकुमार बिश्वकर्मा, मू. १००/-

शेफाली के फूल (का. सं.) : राजेश मिश्र 'सांवरे', मू. ७५/- मेरा कवि होना (का. सं.) : त्रिलोचन सिंह अरोरा, मू. १००/-

...और दिल टूट गया (गीत/ग़ज़ल) : इनायत खान 'परदेसी', मू. ६०/-

ज़िंदगी होड़ में है (का. सं.) : रवि यादव, मू. १२५/- आशुतोष का आकाश : अवनींद्र आशुतोष (अमूल्य)

With Best Compliments from

SHREE MAHALAXMI REAL ESTATE

Sale / Purchase, Rental Basis of Flats, Shops & Open Plots

Sp. in : Sagar Darshan & Sea Breeze Towers

Tower No. 10, Shop No. 14, Sector-16, Phase-III (Sea Breeze Society), Nerul (W), Navi Mumbai-400 706.

Ph. : (O) 2772 0417 / 2772 2206. E-mail : kbhatt_16@yahoo.com

हमारे आजीवन सदस्य

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, पंचमढ़ी
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कलकत्ता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, मुंबई
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, रांची
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यखमी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, नवी मुंबई
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, फतेहगढ़
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)
८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, धनबाद
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़
९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत वाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन, फ़र्रुख़ाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुख़ाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई

वाराणसी विकास प्राधिकरण, वाराणसी

नगर के सर्वांगीण विकास एवं वाराणसी की गरिमा कायम रखने हेतु नागरिकों से अपेक्षा है कि :-

1. हेरिटेज जोन के अंतर्गत मकान निर्माण कतिपय प्रतिबंधों के साथ ही अनुमन्य है, हेरिटेज जोन की जानकारी आप विकास प्राधिकरण से कर सकते हैं ।

2. अवैध कालोनी जिसका ले आउट पास नहीं है, उसमें प्लाट क्रय न करें क्योंकि अवैध कालोनियों में मानचित्र स्वीकृत नहीं हो सकता ।

3. प्राधिकरण से भवन मानचित्र स्वीकार कराकर ही निर्माण करें अन्यथा अनधिकृत निर्माण किये गये भवनों को गिराया जा सकता है और साथ में धारा-26 के अंतर्गत अभियोजन दायर किया जा सकता है तथा सक्षम न्यायालय द्वारा अर्थदंड भी लगाया जा सकता है ।

4. विकास प्राधिकरण द्वारा आबंटित भूमि/भवन अन्य व्यक्ति से तब तक क्रय न करें जब तक मूल आबंटी संपूर्ण धनराशि जमा करके अपने नाम रजिस्ट्री न करा ले । बिना ट्रांसफर अनुमति प्राप्त किये कोई भूमि/भवन क्रय न करें ।

5. रूफ टॉप रेन वाटर हार्वेस्टिंग एवं ग्राउंड वाटर चार्जिंग हेतु शासन के आदेशानुसार 300 वर्ग मी. क्षेत्रफल से अधिक के भवनों में रेन वाटर हार्वेस्टिंग का प्रावधान किया जाना अनिवार्य है । अतः भव निर्माण हेतु मानचित्र स्वीकृत कराते समय इसका अनुपालन करना आवश्यक है ।

(के. डी. सिंह)	**(आर. विक्रम सिंह)**	**(मुक्तेश मोहन मिश्र)**
उप सचिव	सचिव	उपाध्यक्ष

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

With Best Compliments From :

DTC

D. T. Consultants

**CIVIL, PH, PIPING, PAINTING, INTERIORS,
LANDSCAPE & FABRICATION.**

PWD REGISTERED CONTRACTOR

Shri Shivaji Patil Chawl, Heera Baug Kamawadi,
Chh. Shivaji Maharaj Chowk, Chembur, Mumbai - 400 088.

Tel/Fax : 2557 6237, 2555 5966.
Mobile : 9821 355 930
Email : santosh2210@vsnl.net

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ २३४८ व २५२१ ६२८४.